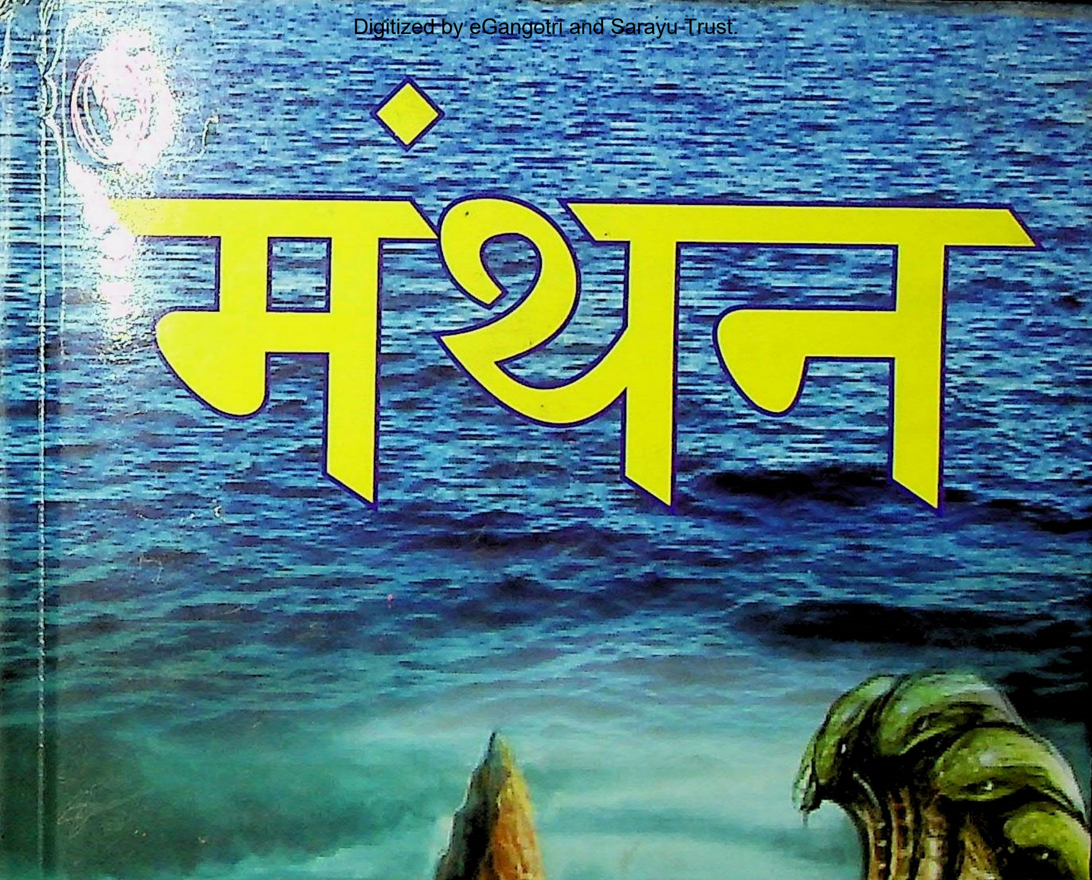
मंथन



डॉ० तिलक राज शर्मा

alfa Publications

'मंथन' में प्रस्तुत शोध–पत्र, विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा प्रकाशित शोध–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। पुस्तक में शामिल करने से पहले उनमें कुछ जरूरी संशोधन–संवर्धन भी किया गया है। ज्ञान और सृजन के समुद्र में उतरते हुए पारंपरिक काव्य चिंतन और नयी काव्य दृष्टि दोनों का यथासंभव अनुशीलन करने का प्रयास किया गया है ताकि प्रस्तुत साहित्यिक मन्थन के माध्यम से कुछ साकारात्मक बिंदुओं को रेखांकित किया जा सकें।

प्रस्तुत पुस्तक में साठोत्तरी हिन्दी कविता में उभरे विभिन्न सामसामयिक संदर्भ, सरोकार, काव्यान्दोलन, नवीन सौंदर्य दृष्टि, शिल्प के आयाम, नव जागरण, आधुनिकता–बोध, जीवन मूल्यों के बदलते संदर्भ, अंतर्राष्ट्रीय और विश्व बन्धुत्त्व की भावना, पारिवारिक विघटन, सामाजिक विश्लेषण, मनोविश्लेषणवाद इत्यादि प्रवृत्तियों, वादों, शैली–शिल्प के विकसित प्रतिमानों का ऐतिहासिक अनुशीलन किया गया है।

मंथन

मंथन

Manthan

लेखक

डॉ. तिलक राज शर्मा

Dr Tilak Raj Sharma

Alfa Publications

अल्फा पब्लिकेशन्स

नई दिल्ली–110 002

प्रकाशकः

अल्फा पब्लिकेशन्स

4398/5, अंसारी रोड़, दरियागंज,

नई दिल्ली - 110 002

फोन न. : 23275092, 23274151

ई-मेल : alfapublications@yahoo.co.in

: alfapublications@gmail.com

प्रथम संस्करण : 2012

ISBN : 978-93-80937-84-7

भारत में मुद्रित

मुद्रक

सुमन प्रिंटर्स, दिल्ली-110093

समर्पण

अनवरत कर्मशील बने रहने की ओजस्वी प्रेरणा के स्रोत स्वर्गीय श्रद्धेय प्रो. (डा.) संसार सिंह जी

(अध्यक्ष वाणिज्य विभाग राजकीय महाविद्यालय कठुआ जम्मू व कश्मीर)

को सादर समर्पित, जिनके सौजन्य और स्नेह ने मेरे साधना-पथ को दीप्तमान किया है।

हिन्दी भाषा नहीं वाणी है, वाणी शासन की नहीं, जन जन की। वाणी तन की नहीं मन की। वाणी अधिकार की नहीं प्यार की। यह अधिकार की भाषा नहीं राष्ट्र के सुख-दुख की अभिव्यक्ति है। संतों की अनुभूति है। राष्ट्र का स्वर है। हिंदी भाषा नहीं नाद है, जो कबीर ने अनहद के रूप में व्यक्त किया था और मैथिलीशरण तथा प्रेमचंद द्वारा भारत-भारती के रूप में सर्वत्र प्रचारित हुई।

हिन्दी राजाओं की बोली नहीं, संतजनों की झोली का प्रसाद है।

निवेदन

एक हजार से भी अधिक दीर्घकाल-परंपरा के हिन्दी काव्य के इतिहास में विभिन्न प्रवृत्तियों, वादों, कथ्य और शिल्प के विविध आयामों का विकसित होना स्वाभाविक ही है। हिन्दी काव्य धारा कभी संतों की वाणी सुनाती वही है तो कभी कृष्ण भक्ति का कीर्त्तन करती, रात की लीला दर्शाती गतिमान हुई है। कभी श्रृंगार का चषक पिलाती तो कभी राष्ट्रधुन से मुग्ध करती प्रवाहित हुई है। कभी उसने अष्टछाप की छाप छोड़ी है तो कहीं छायावाद की छाया डाली है। कहीं रहस्यवाद का रहस्य उसमें छिपा है तो कहीं भौतिकता का यथार्थ उसमें से उभरकर निकला है।

प्रस्तुत शोध पत्र, आलेख, विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा प्रकाशित शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। पुस्तक में शामिल करने से पहले इनमें कुछ जरूरी संशोधन-संवर्धन किया गया हैं ज्ञान और सृजन के समुद्र में उतरते हुए पारंपरिक काव्य चिंतन और नयी काव्य दृष्टि दोनों का यथासंभव अनुशीलन करने का प्रयास किया गया है ताकि प्रस्तुत साहित्यिक मंथन के माध्यम से कुछ सकारात्मक बिंदुओं को रेखांकित किया जा सके।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का इतिहास भी अनेक उपलब्धियों से भरा है। इसमें भी साठोत्तरी हिन्दी कविता विशेष चर्चित और उल्लेखनीय रही है। अनेक काव्यान्दोलनों से गुजरती हुई नयी कविता अपनी पूर्ण परिवेशगत ईमानदारी, अनुभव की प्रामाणिकता और जन मानस का सही प्रतिनिधित्व करती हुई प्रस्तुत हुई है। इसमें एक ओर आम आदमी के दुख दर्द को अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर शोषण और वर्गभेद के प्रति तीखा आक्रोश। उसका सौंदर्य बोध भी मानव जीवन के इर्द-गिर्द ही घूमता है।

प्रस्तुत पुस्तक में साठोत्तरी हिन्दी कविता में उभरे विभिन्न सामसामयिक संदर्भ, सरोकार, काव्यान्दोलन, सौंदर्य दृष्टि, शिल्प के आयाम, नव जागरण, आधुनिकता-बोध, जीवन मूल्यों के बदलते संदर्भ अंतर्राष्ट्रीय और विश्वबंधुत्व की भावना, पारिवारिक विघटन, सामाजिक विश्लेषण, मनोविश्लेषणवाद इत्यादि प्रवृत्तियों, वादों, शैली-शिल्प के विकसित प्रतिमानों का ऐतिहासिक अनुशीलन किया गया है।

इस पुस्तक की रचना में देश-विदेश के जिन विद्वानों, लेखकों की कृतियों से सहायता प्राप्त की है, मैं उन सभी महानुभावों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

परम आदरणीय गुरुवर प्रोफेसर डॉ० राजकुमार भूतपूर्व अध्यक्ष हिन्दी-विभाग जम्मू विश्वविद्यालय का हृदय से आभारी हूँ जिनका मार्ग दर्शन मुझे सदैव प्रेरित करता रहता है।

माननीय डॉ० रामकृष्ण शर्मा (प्राचार्य राजकीय महाविद्यालय कठुआ, डॉ० आदर्श कुमार मल्होत्रा (प्राचार्य राजकीय महिला महाविद्यालय कठुआ,) स्व० डॉ० संसार सिंह अध्यक्ष-वाणिज्य विभाग, डॉ० संगीता अध्यक्ष हिन्दी-विभाग का हृदय से आभारी हूँ जिनका सकारात्मक परामर्श एवं सक्रिय सहयोग मुझे सदैव मिलता रहा है।

समस्त शिक्षक समाज के अतिरिक्त सभी सहायक साहित्यिक बंधुओं, लेखकों, सहकर्मीयों, परिवार-जनों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनका पूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहता है। 'अल्फा प्रकाशन' नई दिल्ली को भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने मेरे बिखरे हुए शोध-पत्रों को एक पुस्तक रूप प्रधान किया। अंत में मैं उन सबका आभारी हूँ जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में इस पुस्तक के प्रकाशन में सहयोग प्राप्त हुआ।

आशा है प्रस्तुत प्रयास पाठकों, शोधार्थीयों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

दिनांक

12-9-2011

डॉ० तिलक राज शर्मा

प्रो. हिन्दी-विभाग

राजकीय महाविद्यालय

कठुआ (जम्मू व कश्मीर)

विषय-सूची

1. "सातवें दशक की नई हिन्दी कविता में नवजागरण के स्वर"

सातवें दशक की हिन्दी कविता में एक विशेष प्रकार का अलगाव दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत दशक की राजनीतिक और साहित्यिक गुटवंदियों के स्तर पर भारतीय जनमानस में घटित हुए मोहभंग के फलस्वरूप इस दशक की कविता में पूर्ववर्ती कविता से भिन्नता उभर कर सामने आई। इसी भिन्नता को लेकर मैंने इस अवधि की काव्य - सामग्री को अध्ययन के निमित चुना है। प्रस्तुत संदर्भ में प्रवेश करने से पूर्व सातवें दशक की समय सीमा तथा युग चेतना सम्बन्धी समग्र 'स्थितियों को ओर संकेत देना अधिक तर्क संगत होगा।

स्वतंत्रता के पश्चात पहली बार राष्ट्रीय मोहभंग सातवें दशक के आरम्भ में चीनी आक्रमण के साथ हुआ। देश की सभी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में एकदम आए परिवर्तन के फलस्वरूप चारों ओर अशान्ति और भ्रष्टाचार पनपा और संस्कृतिक अवमूल्यन हुआ। कुल मिलाकर इस दशक में हमारा परिवेश वातावरण ऐसा था जिसमें आदमी हताश निराश और विद्रोही था। भारत की वस्तुस्थिति ने युवा वर्ग की मानसिकता को बहुत प्रभावित किया। इस दशक की हिन्दी कविता की सही पहचान के लिए इस काल खण्ड का, अर्थात इन दस वर्षों के समाज का अध्ययन करना तो आवश्यक है ही, परन्तु केवल इसी अवधि के सामाजिक ढाँचे के अध्ययन से हम इस काल की कविता के नये ऊभरते स्वरों से परिचित नहीं हो सकते। अध्ययन की सुविधा के लिए दशकों का विभाजन किया जाता है, किन्तु कोई भी दशक अपने आप में सर्वथा स्वतंत्र ईकाई नहीं होता। एक कड़ी के रूप में यह दशक परस्पर जुड़े रहते हैं।

सातवें दशक में उभरते नये स्वरों का मूल्याकन करते समय एक ओर अकवितावादियों की रचनाओं को लेना चाहूंगा तो दुसरी ओर प्रगतिशील और प्रतिवद्ध कवियों की रचनाओं से गुंजरना आवश्यक होगा। इस दशक के अन्तगर्त एक ओर मुक्तिवोध, रघुवीर सहाय, कुमार विकल, रमेश गोड़ आदि प्रगतिशील युवा कवियों की रचनाओ को लिया गया है तो दुसरी ओर जगदीश चतुर्वेदी, गंगाप्रसाद विमल, अशोक वाजपेयी, कैलाश वाजपेयी, श्रीकान्त वर्मा, जगदीश गुक्त आदि कवियों की

कविताओं को भी सम्मिलित किया गया है। इनमें उन्हीं रचनाओं को लिया गया है, जो आलोच्यकाल के परिवेश को निकट से देखती हैं और अस्वीकार, विरोध, आक्रोश और विद्रोह यानि को नवजागरण की विभिन मुद्राओं में समकालीन यर्थाथ को जैनूइन तरीके से झाकती हैं। कुछ ऐसी रचनाओं को भी इस शोधपत्र में समेटने का प्रयास करूंगा जिन में सातवें दशक का भाव वोध उभरा है जिससे अनेक नवीन सन्दर्भो के प्रति हमारी मान्यताओं में परिर्वतन हुआ है। इस दशक में भारतीय जीवन की सामाजिक परिस्थितियों में बहु आयायी परिवर्तन आया। इस परिवर्तन के महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं – नारी स्वतन्त्रता, युवा पीढ़ी का आक्रोश, मध्य वर्ग की भूमिका, जाति व्यवस्था, परिवारिक विद्यटन और सांस्कृतिक अवमूल्यन इत्यादि। इस दशक के उपयुक्त प्रमुख कवियों की कृतियों में जिस भाव तत्व और शिल्प तत्त्व का जो विकास हुआ है वह मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, आधुनिकता वोध आदि दार्शनिक तत्त्वों से भी प्रभावित है और देश की औद्योगिक प्रगति और बुद्धिवाद की ओर बढ़े हुए झुकाव के कारण एक विशेष प्रकार के युग वोध का विकास हुआ। यह कविता किसी दार्शनिक सिद्धान्त या आदर्श के घेरे में अपने को सीमित नहीं करती अपितु यह कवि तो परम्परागत आदर्शो के प्रति पूर्णतः अश्रदा व्यक्त करता है कवि मणिमकुकर का खण्ड – खण्ड पाखन्ड पर्व' से उदाहरण प्रस्तुत है।

"श्रद्धा, सम्मान और प्रेरणा जैसे शब्दों को
पान की पीक के साथ थुकता हूं मैं
मत्रिमंडलों में बलात्कार करने वाले लोगों पर
मेरे थूक का रंग लाल है''।[1]

वास्तव में यह भाव वोध समाज की मृत मान्यताओं, टूटती हुई परम्पराओं और सामाजिक, राजनीतिक भ्रष्टाचार से क्षुब्ध युवा मानव की अभिव्यक्ति है।

सन् 60 के बाद के कवियों में रघुवीर सहाय का विशेष महत्व है वह अपनी कविता का पूर्णवर्तीयों की कविता से अन्तर बताते हुए कविता संग्रह 'आत्महत्या के विरुद्ध' में लिखते हैं –

''कितना अच्छा था छायावादी
एक दुखः लेकर एक गान देता था
कितना कुज़ल था प्रगतिशील
हर दुखः का कारण वह पहचान लेता था।
कितना अकेला हूँ मैं इस समाज में
जहाँ सदा मरता है एक और मतदाता'',

यह मात्र संयोग की बात नहीं है कि मृत्यु और आत्महत्या जैसी धुरियों के

इर्द-गिर्द घूमती हुई बहुत सारी कविताए लिखी गई हैं। मुक्तिवोध की अंधेरे में' राजकमल चौधरी की 'मुक्ति प्रसंग' श्रीकान्त वर्मा की 'समाधि लेख' इत्यादि अनेक कविताएँ उदाहरण के लिए देखी जा सकती हैं। इन कविताओं में मानव मूल्यों को तलाश रहे मानव की पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है। कुल मिलाकर इस दशक की कविता की वस्तु प्रामणिक अनुभवों और प्रगतिशील जीवन - दृष्टि के तालमेल से गढ़ी गई है। इस दशक का कवि धर्म, परम्परागत रूढ़िवादी, अमानवीय स्वरूप का विरोध करता है। वह मानव शोषण के निमित प्रयुक्त हो रहे ईश्वर, आत्मा, पुर्नजन्म और पुर्वजन्म से जुड़े कर्मफल आदि अवधरणाओं को अस्वीकार करता है। धर्म के बाहयम्वर, कर्मकाण्ड एवं अन्धविश्वासों का व्यंय्यपूर्वक खण्डन करता है। प्रस्तुत दशक की कविता में धर्म का अर्थ ईश्वर की खोज नहीं बल्कि सुखी और सार्थक जीवन की खोज ही है। यह कवि मानता है कि जिस धर्म से जीवन निरर्थक और दयनीय हो जाए उस का विरोध करना ही सबसे बड़ा मानव धर्म है। अतः यह कवि ईश्वर की अपेक्षा मनुष्य और उसके सार्थक जीवन को महत्व देता है। मुक्तिवोध अपनी पुस्तक 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध' में लिखते हैं कि अन्याय के खिलाफ आवाज बुलन्द करें और मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष में और भी अधिक दत्तचित्त हो कर वर्तमान परिस्थितियों को सुधारें, नैतिक हास को थामें, उत्पीड़ित मनुष्य के साथ एकात्म होकर उसकी मुक्ति की उपाय योजना करें।[3]

उर्पयुक्त तथ्य के आधार पर कहा जा सकता है कि कविता के अधिकांश विषय परम्परागत है परन्तु नवीन व्यावहारिक चेतना के साथ अभिव्यक्ति पा रहे हैं। 'प्रेम, सौन्दर्य मानव, ईश्वर, धर्म, काम और प्रकृति के प्रति कवियों के दृष्टिकोणों में परिवर्तन आया है और ओलोच्य कवि परम्परा का विरोध करके, नये सिरे से जीवन मूल्यों का निर्धारण करने की प्रक्रिया से गुजर रहा है। वह प्रगति आंकने के पुराने मानदण्डों का विरोध करता है।

मात्र वस्तु और चेतना के धरातल पर ही नहीं इस दशक की कविता ने भाषा के धरातल पर भी एकदम ताजा और नए प्रयोग किए हैं। भाषा का अभिजात्य प्रायः समाप्त हो गया है और सड़क की भाषा और निहायत आम मुहावरों के इस्तेमाल से कविता का नया सौन्दर्यशास्त्र उभर आया है। तमाम ऐसे शब्द और मुहावरे जिन्हें पूर्ववर्ती कविता में प्रगतिवादीयों द्वारा भी नहीं स्वीकारा गया था, इस दशक में स्वीकृत हो गए और एक प्रकार से कवि ने काव्यगत सौन्दर्य के तमाम पुराने भाषा प्रतिमान खरिज कर दिए। कहने का तात्पर्य यह है कि युग की आवश्यकताओं ने भाषा को सदैव नया संस्कार दिया है। अतः भाषा और शब्द - प्रयोग के सन्दर्भ में इस दशक के कवियों ने एक युगान्तकारी परिवर्तन ला दिया है। विषयवस्तु में परिवर्तन होने से विचारों - भावों को अभिव्यति प्रदान करने के लिए नवीन शब्द - योजना और नयी भाषा का विकास किया

गया जिस से इस के अभिव्यक्ति - पक्ष में एक नए प्रकार की दृष्टि परिलक्षित हुई है।

इस कविता में पर्याप्त मात्र में गहरे, सार्थक और कलात्मक बिम्वों का प्रयोग किया गया है और बिम्व मानवीय सन्दर्भो को उन की गहरी यातना में व्यक्त करने के लिए चुने गए हैं। या वे यथार्थ की अमानवीयता को खोजने के लिए उतने बड़े स्थूल बिम्बों को नाकाफी पाकर फैंटेसी में उतरते हैं।

इस नये काव्य में ऐसे प्रतीक प्रयोग प्राप्त होते हैं जो ज्ञान और अनुभूति के क्षेत्र से गृहीत हुए हैं। प्रतीक विधान के क्षेत्र में अनेक उपलब्धियों के बाद यह भी भुलाया नहीं जा सकती कि इस कविता ने पुराण, इतिहास और साहित्य के घटना प्रसंगों और पात्रों के आधार पर प्रतीक खड़े कर के परम्परा से भी सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही प्राचीन प्रतीकों में नया अर्थ भर कर भी परम्परा को नये रूपों में जीवित रखा है। अत: इस काव्य की प्रतीकात्मकता की उपलब्धि यह है कि कवि जीवन के स्वस्थ साहित्यक दृष्टिकोण को अपना सका है जिस से यह कविता समाज और साहित्य के लिए अध्कि कल्याणकारी सिद्ध हुई है।

निष्कर्षत: मैं कहना चाहूँगा कि इस दशक की सब से बड़ी उपलब्धि है काव्य जगत में सीमांतो की समाप्ति और वर्जनाओं का पूर्ण वहिष्ठकार। कविता के लिए आज कुछ भी, कोई भी शब्द, कोई भी भाव, कोई भी मुहावरा, कोई भी वस्तुसत्य अस्पृश्य नहीं रह गया है। भाषा अभिव्यक्ति और सम्वेदना के स्तर पर यह कविता भारतीय जीवन को उस के समूये वस्तुगत संदर्भ में उठाती है और उसका वेबाक चित्रण करती है।

सन्दर्भ सूची

लेखक	रचना	पृष्ठ
1. मणि मधुकर:	'खण्ड खण्ड पाखन्ड पर्व '	14
2. रघुवीर सहाय:	''आत्महत्या के विरूध''	9
3. मुक्तिवोध:	''नयी कविता का आत्मसघर्ष्श तथा अन्य निवन्ध''	16

❑❑❑

2. "नयी हिन्दी कविता का सौन्दर्य बोध"

सौन्दर्यशास्त्र के सम्बन्ध में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी- अपनी परिभाषाएँ दी हैं । जिनके आधार पर कहा जा सकता है, कि सौन्दर्यशास्त्र वह शास्त्र है जो ललित कलाओं के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करता है तथा उनके अनुभूतिक एवं अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य के सिद्धांतों का निरूपण करता है । इस शास्त्र के अध्ययन से सौन्दर्य बोध और सौन्दर्य- चेतना के विकास में योग मिलता है और रूचियों का परिष्कार लेता है।

आधुनिक काल भारतीय जन-जीवन में सच्चे अर्थो में नयी जागृति का समय है, जिसने जीवन की दिशा और कलात्मक सौन्दर्य - भावना को आमूल परिवर्तित कर दिया। प्रजातंत्र की भावना, विज्ञान की बौद्धिक दृष्टि और औद्योगिकरण से उत्पन्न भौतिक परिस्थितियों ने रूढ़ भारतीय जीवन में परिवर्तन को अनिवार्य कर दिया। विज्ञान के साथ मनोविज्ञान के मानस- विश्लेषण और मार्क्सवाद की यथार्थो-मुख सामाजिक दृष्टि ने भी परम्परागत मूल्यों को बदलकर जीवन और साहित्य को नयी दिशा और गति दी। साहित्य के क्षेत्र में अनेक नवीन- प्रवृतियों और वादों का विकास हुआ, जिन्होंने सौन्दर्य के नये आयोग को सामने रखा। इन प्रवृत्तियों के द्वारा कविता की सौन्दर्य भावना ने एक ओर नये सिरे से नैसर्गिक स्वच्छन्द और उदात्त रूप प्राप्त किया जो प्राचीन सौन्दर्य भावना से अधिक व्यापक और सार्वभौमिक हैं तो दूसरी ओर उसने यर्थाथवादी व्यापकता, मनोवैज्ञानिक गहराई और सामाजिक चेतना प्राप्त की, जो आधुनिक सौन्दर्य भावना की प्रधान दिशाएँ है।

प्रयोगवाद और नई कविता में कुछ दृष्टि भेद होने पर भी उनकी सौन्दर्य भावना में कोई तात्विक अन्तर नहीं है। प्रयोगवादी सौन्दर्यबोध नयी कविता में अधिक परिष्कृत रूप में व्यक्त हुआ है। नई कविता में यथार्थ के चित्रण में जीवन के सुन्दर-असुन्दर दोनों ही रूप समानभाव से परिग्रहीत होते हैं। नया कवि दोनों के प्रति समान रूप से जागरूक हैं । वह कमल के साथ कीचड़ के महत्व को जानता है और स्कूलों के साथ कांटों के अस्तित्व को स्वीकारता है। नयी कविता की मुख्य प्रवृत्ति जीवन के समस्त यथार्थ का अविकल चित्रण है। नयी कविता के सौन्दर्य बोध में

ठोस–बौद्धिकता, वैज्ञानिकता और यर्थाथता है। जीवन की वास्तविकता को स्पष्ट रूप से और ईमानदारी से चित्रित कर देना ही जीवन का एक मात्र सत्य है और जो सत्य है वही सुन्दर है। नयी कविता के सौन्दर्य में समाजन्य परिस्थितियों, जीवन के वैष्म्य, कुण्ठा, घुटन, संघर्ष आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। जीवन में जितनी कुरूपता, विरूपता कटुता, वासना, और गन्दगी है, उन सबको अभिव्यक्त करके नया कवि नये सौन्दर्य की प्रतिष्ठा में संलग्न है। वह विरूपता और असुन्दरता को भी सौन्दर्य बोध के लिये एक विशेष महत्व और मूल्य की वस्तु मानता है। प्रत्यक्ष रूप में नयी कविता में सौन्दर्य के प्रतीक पुराने या परम्परागत उपमानों को बदल कर नया कवि नये सौन्दर्य मान स्थापित करने में संलग्न है।

सातवें दशक की नयी हिन्दी कविता की सौन्दर्य दृष्टि, पृष्ठभूमि, परिस्थितियों और कवियों के सौन्दर्य सम्बन्धी वक्तव्यों और उनकी प्रमुख कृतियों पर विचार करते हुये कहा जा सकता है। कि मार्क्सवादी जीवन दर्शन, अस्तित्वादी विचारधारा तथा आधुनिकता बोध इत्यादि सौन्दर्य के समसामयिक आयामों को आत्मसात करते हुए यह कविता के कई नये आयाम लेकर आगे बढ़ी है।

सातवें दशक के अन्तर्गत एक ओर मुक्तिबोध रघुवीर सहाय, कुमार विकल, रमेष्ठा गौड़ आदि प्रगतिशील युवा कवियों की रचनाओं को लिया गया है। तो दूसरी ओर जगदीश चतुर्वेदी गंगा प्रसाद विमल, श्याम परमार, अशोक वाजपेयी, कैलाश वाजपेयी, श्री कांत वर्मा, दूधानाथ सिंह, जगदीश गुप्त आदि कवियों की कविताएं भी सम्मिलित हैं। इस लेख में प्रायः उन्हीं रचनाओं को लिया गया है जो आलोच्यकाल के परिवेश को निकट से देखती हैं और अस्वीकार, विरोध, आक्रोश और विद्रोह की विभिन्न मुद्राओं में समकालीन यथार्थ को जैनूइन तरीके से झांकती है।

सातवें दशक की कविता में सामाजिक, राजनीतिक, वैयक्तिक और अर्न्तराष्ट्रीय विषयों को नवीन विकसित सौन्दर्य दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में आंकने का प्रयास किया गया है। सातवें दशक की कविता नये भाव बोध, नयी समझ तथा नये मानवीय स्तरों को उद्घाटिक करती हुई आगे बढ़ी है। यही कारण है कि यह नयी कविता सौन्दर्य को नये सन्दर्भो में देखती है और उसे नये आयाम देती है।

सातवें दशक की हिन्दी कविता के अधिकाश विषय परम्परागत हैं, परन्तु वह नई वस्तु के नवीन व्यावहारिक चेतना के साथ अभिव्यक्ति पा रहे हैं। प्रेम, सौन्दर्य, मानव, ईश्वर, धर्म, काम, और प्रकृति के प्रति कवियों के दृष्टिकोण में इस परिवर्तन को देखा जा सकता है। आज हम जिस सन्दर्भ में जी रहे हैं और जिसे भोग रहे हैं, उसी सन्दर्भ में कविता का मूल्यांकन किया जाना उचित है। जिसके फलस्वरूप इस नयी कविता को भी नयी सौन्दर्य दृष्टि के आधार पर परखने का प्रयास किया जा रहा है।

अभिव्यक्ति के सभी माध्यमों में भाषा सर्वाधिक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली माध्यम है। युग की आवश्यकताओं ने भाषा को सर्दव नया संस्कार दिया है। भाषा और शब्द प्रयोग के सन्दर्भ में सातवें दशक के कवियों ने एक युगान्तकारी परिवर्तन ला दिया है । निष्कर्षतः आज के युग की देन – विसंगति का फैलाव, मृत्युबोध, रिक्तता, अकेलापन, कुण्ठा, यांत्रिक जीवन, अलगाव, एकांकीपन, सम्वेदना आदि सभी तो सातवें दशक की नयी कविता में मुखर हुये है। अतएव इनके अनुकूल भाषा को भी तैयार किया गया। सातवें दशक की नयी कविता में पर्याप्त मात्र में गहरे, सार्थक और कलात्मक बिम्बों का इस्तेमाल किया गया है। और बिम्ब मानवीय संदर्भो को उनकी गहरी यातना में व्यक्त करने के लिये चुने गए हैं।

सातवें दशक की काव्यगत सौन्दर्य दृष्टि के संदर्भ में प्रतीक विधान का मूल्य सर्वाधिक है। इस कविता के प्रतीक विधान की विशेषता यह रही है कि यह कवि जीवन के स्वस्थ सामाजिक दृष्टिकोण को अपना सके हैं और जिससे नई कविता समाज और साहित्य के लिये अधिक कल्याणकारी सिद्ध हुई है। अतः सातवें दशक के नये कवियों की इस प्रतीक योजना ने एक तरु उनके काव्य सौन्दर्य को समद्ध बनाया तो दूसरी ओर सौन्दर्य के क्षेत्र को नवीन मार्मिक अभिव्यंजना शक्ति प्रदान की है।

❑ ❑ ❑

3. "कुआनों नदी" : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (1969–1973)

सर्वेश्वर कृत "कुआनों नदी", एक सशक्त काव्य रचना है जोकि राजकमल नई दिल्ली से प्रकाशित है, प्रस्तुत कविता संग्रह में कुल उन्नीस (19) कविताएं संकलित हैं जो अपनी एक अलग पहचान रखती हैं और अपने पाठकों में नया भावबोध यानि कि एक सामाजिक परिवर्तन को जागृत करती है। इन कविताओं के क्रमशः शीर्षक इस प्रकार है – कुआनों नदी, कुआनों नदी के पार, कुआनों नदी खतरे का निशान, गरीबी हटाओ, भजैनियां का पोखरा, गोवरैले, हम ले चलेंगे, दुकेली मौत, बांसगांव, जब पसलियां ही किला हो, एक बस्ती जल रही है, शरणार्थी, कंवोदिया, दंगों के बाद, युद्ध के नाम पर, यही वह पत्थर है, पथराव, झाडे रौ महगुआ, गरीबों का गीत इत्यादि।

प्रस्तुत कविताओं में कवि ने अपने समय की हर व्यवस्था को वाणी देने का प्रयास किया है, और इन कविताओं से यह प्रतिभासित होता है, कि सर्वेश्वर जी भयंकर अमानवीयता के बीच अपने स्वाभाविक रूप को बनाए रखने के लिये प्रबल जिजीविषा लिए हुए हैं, क्योंकि मुखौटों के बीच सहज स्वाभाविक रूप को बचा पाना कठिन हो गया है। प्रस्तुत कविताएं बेजुबान जनता को जवाब देना चाहती है और भ्रष्टाचार के सम्पूर्ण चरित्र को अपने ढंग से परिभाषित करना चाहती है और यही कवि की सामाजिक सौंदर्य दृष्टि भी है।

सर्वेश्वर की वैचारिक बेचैनी इन कविताओं में अनेक स्तरों पर उभर कर आई है। गरींबी, भूख, शोषण आदि की स्थिति ने कवि को एक बेचैनी दी है। यह बेचैनी भावात्मक आवेग मात्र नहीं है। बल्कि पूरी व्यवस्था के रूप पर विचार करने को बाध्य करती है। इस वैचारिक तपन की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति कुआनो नदी–खतरे का निशान नामक कविता में हुई है। यह कविता एक प्रकार से उन के अनुभवों का निचोड़ है। खौलते हुए जीवन कणों से रक्त का दस्तावेज है–

"पानी चढ़ रहा है–
खून खौल रहा है,
बहुत करीब आ गया है
खतरे का निशान"

इस लम्बी कविता को पढ़कर मुक्तिबोध की 'अन्धेरे में' कविता की याद आ जाती है। वहां भी काव्य- पुरुष आधी रात को ही सांकल खटकटाता है। 'अखबार और नेता' इस कविता में भी घूमते हैं और प्रस्तुत कविता में भी। यहां शब्दों की बन्दूक रखी रहती है, वहां भी गांधी कवि के ध्यान में डोलते हैं और यहां -

''घर के पिछवाड़े बंधी
गांधी जी की बकरी मिमियाती है
और कहीं गोली चलने की आवाज आती है''।[2]
''कुआनों नदी-खतरे के निशान में -
बाहर फिर गोली चलने की
आवाज़ आती है
गहरे अंधेरे में वह
झमझमाता निकल जाता है''।

इसके अतिरिक्त राजनैतिक दबाव और व्यवस्था पर व्यंग्य करने के लिए सर्वेश्वर जैसे-मज़बूर हैं। उसे लगता है कि यदि उसने ऐसा नहीं किया तो जनता के साथ गंद्दारी है। इसलिये कहने से ही सन्तोष है । 'कुआनों नदी' में गरीबी हटाओं शीर्षक से तत्कालीन राजनीति पर व्यंग्य किया गया है कि गरीबी हटाओ पर जनता निरन्तर पुकार रही थी कि गरीबी नहीं गरीब हटाए जा रहे हैं। इस पर व्यंग्य करते हुए कवि ने लिखा है-

''गरीबी हटाओ सुनते ही
वे कब्रिस्तानों की ओर लपके
और मुर्दो पर पड़ी वे चादरें उतारने लगे
जब लौटकर आये तो मुर्दो की जगह पर गिद् बैठे थे''।

धीरे- धीरे हालत बिगड़ती गई। इस समस्त व्यवस्था पर व्यंग्य करता कवि लिखता है-

''गौवरेले
काली चमकदार पीठ लिए
गन्दगी से अपनी अपनी दुनिया रचते
ढकेलते आगे बढ़ रहे हैं
कितने आत्म विश्वास के साथ''।

प्रस्तुत कविताओं में कवि कहना चाहता है कि पच्चीस वर्षों के बाद हम

'गोवरैले' में बदल गये हैं। सब कुछ गलत हो रहा है, लेकिन हम कुछ नहीं कर पा रहे हैं।

प्रस्तुत कवि अपने देश की राजनीति पर ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों और घावों पर भी निगाह रखते हैं।

''कम्बोडिया पर हो रहे अत्याचारों को देखकर कवि चुप नहीं बैठ पाया। कवि की यही बेचैनी हमें मानवतावाद की ओर अग्रसर करती हुई प्रतीत होती है।

''जब जंगल जल रहे हों, आदमियों के
और बस्तियां औरतों बच्चों समेत
खाक में मिल रही हों
तब जान लो अब कुछ समझने को नहीं रहा''।

कवि की मानवीय संवेदना सीमित न होकर सर्वभौम बनती जाती है। धरती के किसी भी कोने में अन्याय होता दिखाई देता है। तो कवि आवेग में आ जाता है। ''भुजैनिया का पोखरा'' नामक कविता में गरीबी का दृश्य हमें सत्य के निकट ले जाना चाहता है।

''भाड़ के सामने काली भूतनी-सी
आज भी वह बैठी है
पसीने से चिपचिपाती देह लिए
चुप खामोश''।

इस कविता में उस औरत की व्यथा कथा है जो खुद भी काम करती है, जिसके बच्चे भी अधानंगे, भूखे हाथ बंटाते हैं।

सर्वेश्वर के प्रस्तुत काव्य संकलन में गांव के दिन, दोपहरी और शाम के जो चित्र हैं वे गरीबी से भरे हुए हैं, और मानवीय संवेदनाओं के अधिक करीब लगते हैं। भूख और गरीबी की यही दर्दनाक 'कुआनों नदी' है जिस पर आज़ादी के बाद भी कुछ परिवर्तन नहीं हुआ है। सब कुछ वैसा ही है जैसा पहले था। दिल्ली में एक नये ढंग की जिन्दगी गलीचे देखकर कवि को अपने गांव की कुआनों नदी याद आती है-

''बहुत गरीब ज़िला है वह बस्ती
जहां मैनें पहली बार देखा था
मेरे नाना इस नदी में कूद पड़े थे
और निकाल लिए गये थे।
ज़िन्दगी से ऊब कर मर नहीं सके''।

इस कविता में पाठकीय संवेदना को उभारने की इतनी सम्प्रेणात्मक शक्ति है कि इसे पढ़कर एकान्त में बैठकर रोने को मन करता है।

कुल मिलाकर निर्ष्कषतः कहा जा सकता है कि सर्वेश्वर की प्रस्तुत कविताओं में पूंजीवादी व्यवस्था सामाजिक जड़ता, साम्राज्यवाद और सामन्तवादी मनोवृष्टि का विरोध मिलता है, 'कुआनों नदी' में कवि घटनाओं के बिम्ब ही खड़े नहीं करता बल्कि अपने जीवनानुभवों को आकार देता है। यही कारण है कि चेतना में 'नाना और पिता' के दैन्य स्थितियों के बिम्ब उभरते हैं। सामान्य जन की विवशताएं उभरती हैं और आर्थिक संघर्षों के हाशिये फैलने लगते हैं। और दुखों की कराह ही 'कुआनों नदी' बन जाती है। इसलिये दिल्ली की सड़कों पर गांवों की पिछड़ी और आजागरूक जनता बहती हुई दिखाई देती है। गांव की पगडडियों पर उभरती पक्की सड़कें गरीब के पैर छीलती दिखाई देती हैं।

❑❑❑

4. नयी कविता का बोध-पक्ष

नई कविता की एक व्यवस्थित परिभाषा प्रस्तुत करने का प्रयास श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने 'नई कविता के प्रतिमान' में किया है। उनके अनुसार नई कविता का मूल वृत्त उन बिंदुओं का समूह है, जिमसें वह सभी तत्त्व समन्वित हैं जो नीचे सौन्दर्य-बोध से विकसित होते हैं। "नई कविता से उनका आशय उसकी नई परिप्रेक्षणीयता, अनुभूतियों के नए रूपान्तर और उनके नए अनुभवक्षेत्र, सौन्दर्य बोध के नए धरातल, परम्परागत विकृत मूल्यों के परिष्करण, मतवादी क्रांतियों से मुक्ति पाने की कामना तथा तदात्म सत्य की वे परिधियाँ जिनमें हमारा रागात्मक रसबोध नए आयामों का अन्वेषण करने की सामर्थ्य पाता है, आदि से है।"

नई कविता नए समाजीकृत सौन्दर्य-बोध पर ही आस्था रखती है। इस नवीन आस्था का कारण यह है कि वर्तमान सदैव प्रगति के प्रति आश्वस्त होता है। और उसके लिए पुरातन मूल्यों को अदृश्य भी करता चलता है। इस धारा के रचनाकारां ने जीवन के यथार्थ से नए सौन्दर्य-बोध की प्राप्ति की है तथा नए सौन्दर्य-तत्त्वों का अनुशीलन भी किया गया है। सौन्दर्यानुशीलन के इन क्षणों में रचनाकार की अनुभूतियाँ एवं भावस्थितियाँ कुण्ठित नहीं हुई अपितु उनका संतुलित प्रकटीकरण भी हुआ है। नई कविता में वैयक्तिक मूल्य भी समाजीकृत रूप में ही प्रस्तुत हुए हैं।

नई कविता की निरीक्षण-प्रक्रिया वस्तु-सौन्दर्य से संलग्न है किंतु उसकी अभिव्यक्ति पूर्णरूपेन भाव-प्रधान है। रूप चित्रों का अवलोकन करने के उपरान्त उसका भावात्मक स्वरूप प्रस्तुत करने का कार्य नई कविता के रचनाकारों ने किया है।

नई कविता में सौन्दर्य की अपेक्षा सत्य का आधिक्य है। कल्पनाप्रसूत सौन्दर्य जो रोमांटिक कवियों का प्रदेय था, इस नई कविता में यथार्थ-जीवन-दर्शन की भूमिका के सम्मुख नहीं ठहर सकता। नई कवि में सत्य का आग्रह विशेष रूप से है। वह समाज के मध्य यथार्थ की प्रतिष्ठा करने का संकल्प लिए है। व्यक्ति समाज में रहता है—समाज में रहता हुआ वह सौन्दर्य और कलुष साथ-साथ भोगता है। उसके लिए दोनों साथ है। कलुष भी उसकी विचारधारा को प्रभावित करता है। आज के जीवन को अभिव्यक्ति देने के संदर्भ में उस भी उतना ही महत्त्व है जितना सौन्दर्य का रहा है। भाव-सौन्दर्य की प्रतिष्ठा और अभिव्यक्ति को नया कवि एकाकी, एक

पक्षीय और इसीलिए समग्र जीवन के सन्दर्भ में अधूरा मानता है। साहित्य में उससे पूर्व इस कलुष पक्ष की अभिव्यक्ति को उपेक्षित माना जाता रहा है। इस बात की प्रतिक्रिया नए कवि के काव्य में हुई है और उसने इस कलुष को सामाजिक यथार्थ के नाम पर प्रभूत अभिव्यक्ति दी है। इस तरह "उसने समाज और जीवन के सत्य-असत्य, कलुष और पवित्र, सुन्दर और असुन्दर सभी भावतत्त्वों को समान रूप से निरूपित किया है और साहित्यिक विषयवस्तु के सन्दर्भ में 'त्याज्य' और 'वर्जित' शब्दों की महिमा को बिल्कुल न्यून कर दिया है। यह सब सत्य के निरूपण के लिए किया गया है। इसी सत्य की प्रतिष्ठा के लिए नई कविता के आयामों को विस्तार मिला है और परिणामस्वरूप 'सकीर्ण' तथा -सकुंचित' प्रवृतियों के लिए नई कविता में कोई स्थान नहीं रह गया।"

वस्तुतः भाववादी सम्पर्क-साधना की प्रधानता के कारण पिछली पीढ़ी के काव्य-संस्कार सार्वजनीय होने से वंचित रहे। इसी प्रकार प्रगतिवाद भी पूर्ण वस्तुवादी सम्पर्क साधना की प्रक्रिया से प्रेरित रहा जिससे जीवन की कठोर विराटता की सौन्दर्यवादी अभिव्यंजना नहीं हो सकी। नई कविता की विशेषता यह है कि इस धारा के रचनाकारों ने 'भाव' और 'वस्तु' का पूर्णतः सम्बंध स्थापित किया है। सम्बंध की इस प्रक्रिया के कारण काव्य-चेतना में अधिक सुबोधता आ गई है। भाव और वस्तु के समन्वय के साथ-साथ भाव छायाओं के परिपार्श्व में ही वस्तु-तत्त्व का अनुशीलन भी किया गया है। निष्कर्षतः यह कहना उचित होगा कि नई कविता के काव्य-संस्कार के ग्रहण की प्रक्रिया पूर्ण सौन्दर्यवादी है।

नई कविता में सौन्दर्यवादी भूमिकाओं का प्रस्तुतीकरण किया गया है। इस धारा के रचनाकारों की दृष्टि जहाँ एक ओर भावसत्यों का उद्घाटन करती है, वहाँ दूसरी ओर कलातत्त्वों का अनुशीलन भी करती है। नरेश मेहता पूर्ण सौन्दर्यवादी हैं तथा वस्तु-जगत् की समस्त प्रक्रियाओं का निरीक्षण-परीक्षण करते हुए उन्होंने भावतत्त्वों का पूर्णरूपेण समन्वय प्रस्तुत किया है।

नई कविता की यह विशेषता है कि वह दृश्य सत्य का विचार-पूर्ण निरीक्षण-परीक्षण तो करती ही है, साथ ही उसका सौन्दर्यमय विश्लेषण करते हुए, कलात्मक अभिव्यंजना भी करती है। नई कविता में सौन्दर्य-बोध के सभी दर्शन मिलते हैं। व्यक्ति-चेतना की प्रधानता जिन स्थलों में हुई है, उनमें से सौन्दर्यानुभूति का स्वरूप सम्बद्ध है। वीरेन्द्र कुमार जैन व्यक्ति-चेतना-वादी हैं किंतु उनकी अभिव्यक्ति में सौन्दर्य-तत्वों का पूर्ण समन्वय मिलता है।

मुक्तिबोध की प्रकृति संश्लेषण-विश्लेषण की है। वे वस्तुसत्य के रहस्यों का उद्घाटन करने के लिए विचार-वैभव का आश्रय लेते हैं। इनके काव्य संस्कारों में भाव, अनुभूति, कल्पना तथा सौन्दर्योपकरणों का पूर्ण सम्मान है। तीव्र अंतर्दृष्टि एवं

विवेचक-निर्णयबुद्धि के आधार पर ही मुक्तिबोध ने सौन्दर्य सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। कवि में एक तीव्र गहन अंतर्दृष्टि है, साथ ही अपने विचारों को कलात्मक सौन्दर्य के साथ प्रकट करने की अद्‌भुत क्षमता भी है। उनके मतानुसार सौन्दर्य कोई स्थायी भाव नहीं है, बल्कि उनमें वैयक्तिक एवं बाह्य उपकरणों से संशोधन-परिवर्धन होता रहता है।

वस्तुतः विशुद्ध सौन्दर्यवाद और कट्टर मार्क्सवाद के मानसिक द्वन्द्व से ही मुक्तिबोध का जन्म हुआ। एक और तो यह दृष्टिकोण था कि कला या साहित्य का उद्देश्य स्वान्तःसुखाय सौन्दर्य-सृजन ही है, विषाद अथवा पीड़ा उसके क्षेत्र से बाहर की वस्तु है। 'तार सप्तक' तक आते-आते मुक्तिबोध कला की इन दोनों विचार-धाराओं के दौर से गुजर चुके थे और उन्हें दोनों के अतिवाद से असंतोष था, क्योंकि विशुद्ध सौन्दर्यवाद एवं उग्र मार्क्सवाद में उन्हें एक अतिवाद-जनित उथलापन प्रतीत हुआ।

तार सप्तक के कवि नेमिचन्द्र जैन के अनुसार, "मुक्तिबोध ने नई कविता के रूपबन्धों, अर्थों तक भाषा को नई दिशा प्रदान की है। मुक्तिबोध का काव्य आज की उपलब्धि है लेकिन इसका मार्ग दर्शक नहीं है।" परंतु श्री पार्थ सारणी कुछ और ही कहते हैं-"मुक्तिबोध के सौन्दर्यशास्त्र का इसलिए महत्त्व है क्योंकि वह एक सिद्धहस्त कवि के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इनके द्वारा अनुभव का फैंटेसी में रूपान्तरण तथा शब्दों में अभिव्यंजना इन तीनों स्तरों के प्रत्यक्ष रूप से वे परिचित थे।"

नई कविता के रचनाकार कविता को संकीर्ण घेरे में, जर्जर निष्प्राण धाराओं में बहाते रहने पर विश्वास नहीं करते हैं उनके क्षेत्र विस्तृत हैं जिनमें जनजीवन के सभी कार्य-व्यापार, सुन्दर-असुन्दर समाहित हैं। वे प्रस्तुतीकरण की शैली में नवीनता के अभिलाषी हैं। आज का कवि यथार्थ चित्रण के अंतर्गत सुन्दर-असुन्दर दोनों के प्रति समान रूप से जागरूक है। सामान्य एवं निम्न से निम्नतर वस्तु उसकी सौन्दर्य वृत्ति को मानो सजग बनाती है। नई कविता में इसीलिए शैली, शिल्प, भाव, वस्तु सभी क्षेत्रों में 'भदेस' का साम्राज्य है। दुष्यन्त कुमार जी की 'मापदण्ड' शीर्षक कविता में 'टूटी हुई बांहें', 'उखड़ी हुई साँसे, 'कुरियाँ बड़ा यौवन' निराश का द्योतक नहीं अपितु जीवन की रह पर और अधिक उत्साह से बढ़ने का निमंत्रण है।

नए कवि के विचार में सौन्दर्य को केवल मधुर और कोमलता की संकुचित परिधि में बांधना अनुचित है। जिस प्रकार शरीर का ऊपरी सौन्दर्य आकर्षक है उसी भाँति अन्दर का ढाँचा भी उतना ही सुन्दर और आकर्षक है। अतः नई कविता का कवि नख-शिख वर्णन में उन सब तत्वों को उभारकर प्रस्तुत करता है जो शरीर के अंतिम सत्य हैं।

नई कविता के सौन्दर्य-बोध में ठोस बौद्धिकता, वैज्ञानिकता और यथार्थता है।

जीवन की वास्तविकता को स्पष्ट रूप से और ईमानदारी से चित्रित कर देना ही जीवन का एकमात्र सत्य है, और जो सत्य है वही सुन्दर है। आज का कवि सौन्दर्य बोध के लिए वस्तु में गुण व प्रभाव की ओर दृष्टि नहीं डालता, अपितु उनके भावों के अनुरूप ही उसको अपनाता है।

जीवन में जितनी कुरूपता, विरूपता, कटुता, वासना और गंदगी है, उनकी सबको अभिव्यक्त करके नया कवि नए सौन्दर्य की प्रतिष्ठा में संलग्न है। वह निरूपता और असुन्दरता को भी सौन्दर्य-बोध के लिए एक विशेष महत्त्व और मूल्य की वस्तु मानता है।

नई कविता में विचारों और भावनाओं की परिस्थिति इस परिवर्तन के साथ ही अभिव्यक्ति के माध्यमों में परिवर्तन द्वारा भी कविता के स्वरूप को बदलने के सचेष्ट प्रयास किए गए। भाषा के क्षेत्र में विस्तार की चेष्टा, विषय-वस्तु के अनुरूप छन्दों में स्वच्छंद नवीनता और नए सौन्दर्य-बोध के अनुरूप चित्र-योजना आदि सभी पक्षों में कवियों ने अपने-अपने ढंग से प्रयोग किए। सौन्दर्य-बोध के इन नए तत्त्वों का विश्लेषण करते हुए नए कवि महादेवी जी के शिशुवत् सौन्दर्य-बोध तथा पन्त के युग-पुरुष का प्रतिवाद तो किया ही है। वे हिन्दी काव्य की समस्त् 'पुरानी-पीढ़ी' की ही कदर्थना करने लगे हैं। उस पुरानी पीढ़ी पर आरोप लगाते हुए कि-"वह शायद कवि को उसके निकट की स्थिति में लाकर रखना चाहती है। जो थोड़ा-सा स्तरों का ज्ञान रखकर कुछ ऐसी दशा दे कि जिससे एक चुटकी दर्द, एक चुटकी खुमार, एक चुटकी तड़प और एक चुटकी उन्माद पैदा हो सके, थोड़ा हंसा जा सके, थोड़ा रोया जा सके।" .... "आज के भाव-बोध और सौन्दर्य-बोध में शायद इतनी बड़ी गैर-जिम्मेदारी का भाव नहीं हैं।"

सप्तकों में कविता के नए रूप का सौन्दर्य है। उसने कवियों की सामाजिक स्थिति और बुद्धिवाद के रूप को अन्तः संघर्ष दिया। हरि नारायण व्यास का कथन है कि "मुझे उस बुद्धिवादिता से बाह्य संघर्ष की प्रेरणा मिली।" शमशेर बहादुर सिंह का विचार है कि "हम आप अपने दिल और नजर का दायरा तंग न कर लें तो देखेंगे कि हम सबकी मिली-जुली जिन्दगी में कला के रूपों का खजाना हर तरह बेहिसाब निखरता चला गया। सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल-छिन होता रहता है। इसका सीधा-सादा मतलब हुआ कि अपने चारों तरफ की जिन्दगी में दिलचस्पी लेना, उसको ठीक-ठाक यानी वैज्ञानिक आधार पर समझना और अनुभूति और अपने अनुभव को इसी समझ और जानकारी से सुलझा कर स्पष्ट करके, पुष्ट करके अपनी कला-भावना को जगाना। यह आधार इस युग के हर सच्चे और ईमानदार कलाकार के लिए बेहद जरूरी है। इस तरह अपनी कला-चेतना को जगाना और उसकी मदद से जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को अपनी कला में सजीव से सजीव रूप देते

जाना, इसी को मैं 'साधना' समझता हूँ। और इसमें कलाकार का संघर्ष छिपा हुआ देखता हूँ। कला में भावनाओं की तराश-खराश, चमक, तेजी और गरमी सब उसी से पैदा होगी, उसी 'संघर्ष' और 'साधना' से, जिसमें अन्तर-बाहर दोनों का मेल है। कला के इस सौन्दर्य और उससे मिलने वाले आनन्द का शत्रु के जहाँ, और जिस निरपेक्ष में भी होंगे—परिस्थितियाँ, व्यक्ति या दल-हर ईमानदार के शत्रु होंगे। क्योंकि आज, घोर और बढ़ती हुई अंधी प्रतिक्रिया के रहते चारों ओर अबाध फैले जीवन की पूरी शक्तियाँ और सारे सौन्दर्य को कलाकार मुक्त रूप से कैसे हरषा सकेगा? .... कला जीवन का सच्चा दर्पण है। और आज के सभी देशों के जीवसन में कायापलट तेजी के साथ आ रही है। क्योंकि आज किसको नहीं दिखाई दे रहा है कि यह क्रांति का युग है। थके हुए पुराने कलाकार की आहों को भी उससे चमक मिलती है, नयों की तो वह काव्य-सामग्री ही है, क्योंकि वही उनके और उनके आगे की पीढ़ियों के लिए नए, उन्मुक्त, सुखी, आदर्श जीवन की नींव डालने वाला है।"

गिरिजा कुमार माथुर में वैयक्तिक स्वर को बनाए रखकर भी कुंठाओं और संशयों से मुक्ति पाने, स्वस्थ सौन्दर्य और रामांस के बीच आस्था का मार्ग खोजते हुए यथार्थ का स्वागत करने और मानवीय परिवेश में व्यक्तित्व के प्रसार की आकांक्षा की भावनाएँ सबसे अधिक स्पष्ट हैं। भावनाओं की जटिलता और अभिव्यक्ति की गूढ़ता से प्रयोगों की रक्षा करने की सतर्कता भी उनमें है। इसलिए वैयक्तिक सरल भावनाओं वाली प्रवृत्ति का विकास गिराजाकुमार माथुर में स्पष्ट रूप से हुआ है। प्रभाकर माचवे भी इसी प्रवृति में आते हैं यद्यपि प्रगतिवादी स्वर उनमें है, रूढ़ियों के प्रति विद्रोह ने उनमें व्यंग्य का रूप ले लिया है। 'अंचल' और भवानी प्रसाद मिश्र यथार्थ के धरातल पर सौन्दर्य चित्रण और केदारनाथ अग्रवाल को सरल रोमानी भावनाओं के प्रगतिवादी स्वर का झुकाव समन्वयवादी प्रवृत्ति की ओर भी था। नागार्जुन कलात्मक सौन्दर्य की अपेक्षा करके सीधी-सादी अभिव्यक्ति को जनसमाज तक पहुँचाने में लगे थे।

नई कविता के मूल्यों की पूर्णतया स्थापना हो चुकी है, और उनके आलोक में नई कविता निश्चित एवं प्रशस्त पथ पर बढ़ने की स्थिति में आ गई है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपना सौन्दर्य-बोध इस कविता में ही व्यक्त कर दिया है—

"आज की दुनिया
विवशता,
भूख,
मृत्यु,
सब सजाने के बाद ही पहचानी जा सकती है।

बिना आकर्षण दुकानें टूट जाती हैं।
शायद कल उनकी समाधियाँ बनेंगी।
जेल भरे से पूर्व
कफन और मूल का
प्रबन्ध नहीं कर लेंगे।
ओछी नहीं है दुनिया:
मैं फिर कहता हूँ।
महज उसका
सौन्दर्य-बोध बढ़ गया है।"

❑❑❑

5. कवि सर्वेश्वर का कथ्य और शिल्प

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य-जीवन का आरंभ सन् 1949 ई० के आसपास से होता है। एक कवि तथा कहानीकार के रूप में वह साहित्य-जगत में प्रवेश करते हैं। अज्ञेय के संपादकत्व में निकलने वाले 'तीसरा सप्तक' (1959 ई०) में कवि रूप में स्थान पाने पर इनकी चर्चा जोर पकड़ती है और बाद में स्वतंत्र काव्य-संकलनों के आने पर वह नई कविता के प्रतिनिधि कवि के रूप में स्थापित हो जाते हैं। गद्य-पद्य को साथ लेकर संकलन रूप में प्रथम बार 'काठ की घंटियाँ बज पड़ती हैं। इस गद्य-पद्य संकलन में इनका प्रमुख रूप में कवि-व्यक्तित्व ही अधिक उभरता हैं वस्तुत: काव्यात्मक मन: स्थितियों एवं सामाजिक तनावों से जन्मी तमाम कहानियाँ कवि के भीतर चलने वाली कविता का ही गद्य रूप है। 'तीसरा सप्तक' को छोड़कर उनके कुल काव्य संकलनों की संख्या सात है। प्रथम काव्य-संकलन 'काठ की घंटियाँ' में सन् 1949-1957 तक की कविताओं को एकत्रित किया गया है। इसमें तीसरे सप्तक की भी कविताएँ सम्मिलित हैं। इस संग्रह में कुल छयासठ कविताएँ हैं जिनमें विषय-वैविध्य एवं रूप-विधान का वैचित्रय एक साथ दृष्टिगत होता है। 'दर्द की गाँठ' खोलने के साथ इन कविताओं में मुक्त-प्रेम के लिए बड़ी तड़पन है। प्रकृति तथा नारी-प्रेम के जीवन्त संकेत कवि ने जीवन की तमाम मजबूरियों, विवशताओं, विडंबनाओं के साथ दिए हैं—

चार नयन मुस्काए, खोए, भींगे, फिर पथराए।
कितनी बड़ी विवशता जीवन की कितना कह पाए।।

इस संग्रह में 'ताँबे के फूल', 'घास काटने की मशीन', 'नीला अज़गर', 'सरकंडे की गाड़ी' आदि ऐसी कविताएँ हैं जिनमें बड़ी बात को बहुत सीधे ढंग से कहा गया हैं 'कलाकार और सिपाही', पोस्टर और आदमी', 'सामाजिक अभिव्यक्ति', 'आत्मसाक्षात्का', 'काठ की घंटियाँ' आदि कविताओं में समसामयिक अनुभव को नया मुहावरा देने की तलाश है। बदलते हुए विचारों का आज के कलाकार से सीधा अकराव इन कविताओं में मिलता है। सर्वेश्वर की अनुभूति ट्रेजिक है ठीक उस

आदमी की तरह जो अपनी लाश को लिए स्वयं घूम रहा है। यही कारण है कि संग्रह की अधिकांश कविताओं में आज के मानव की ट्रेजिडी व्यक्त हुई है–

मैं देना चाहता हूँ
वह ही नहीं जो मेरे पास होगा,
बल्कि वह भी जो आने वाली
शताब्दियों में मेरे पास होगा,
लेकिन होंठ काटकर रह जाता हूँ।

'ट्रेजिक फीलिंग' के क्रम में एक-दो कविताएँ ऐसी भी हैं जो रूमानियत-भरी हैं, किंतु रूमानियत भी ऐसी नहीं है जिसमें मजा लेने की भावना हो। वहाँ भी मध्यवर्गीय ट्रेजिडी ही सामने हैं। 'पूर्णिमा प्यार' कविता में प्रेमजनित अंतर्द्वन्द्व की झाँकी है। यह द्वन्द्व मध्यवर्गीय द्वन्द्व है तभी तो वह साँझ के समय अनजाने वृक्षों की रहस्यमयी छायाओं में घिर जाता है। निराशा गहन से गहनतर होती जाती है–

दूर कहीं–
मुझे खोजते फिरते मेरे रोते हुए
बच्चे की आवाज आती है,
और मेरी पत्नी
रसोई घर की फीकी बीमार रोशनी में बैठी
मेरी प्रतीक्षा करती दिख जाती है।

इन पंक्तियों में कवि के माध्यम से आज के मध्यवर्गीय व्यक्ति की तस्वीर ही तो उभरती है। इसी के साथ 'कहीं-कहीं कच्ची सड़क थी' और 'भरम गये हो तुम' कविताओं में सर्वेश्वर ने बड़ी सहज शैली में यह बता दिया कि आज जीवन में पुरानेपन का गला दबोचकर नयापन किस तरह हावी है, परंतु एक बात यहाँ खटकती है–अतीत या पुराने के प्रति अतिरिक्त आसक्ति।

कुल मिलाकर संग्रह में मध्यवर्गीय जिंदगी की तस्वीर है, परंतु कुछ बातें बार-बार नई-नई आवाज में नये-नये खोल में सामने आई हैं। सर्वेश्वर बार-बार अकेलेपन, जनजीवन, अस्तित्वहीनता, निरर्थक जिंदगी कृत्रिमता में फंसी जिंदगी आदि पर कविता लिखते रहे हैं, किंतु इस विषयगत दुहरावट के दोष को नये प्रस्तुतीकरण तंत्र से ढककर उसे उबाने वाला नहीं बनने दिया है। भाषा कहीं भी दुरूह और अस्पष्ट नहीं है। सीधी-सपाट धरती पर शब्दों के महल बड़ी सहज और स्वाभाविक मुद्रा में खड़े हैं। उनमें जहाँ कहीं भी प्रतीक और बिंबों का शिल्प है, वहाँ भी अर्थ आसानी से पहचाना और समझा जा सकता है।

सन् 1958 से 1963 तक की कविताओं का दूसरा संकलन 'बाँस का पुल' है। इसमें विषय-वैविध्य लिए हुए चालीस कविताएँ हैं। शुरूआत में एक सशक्त घोषणा है :

आगे आगे बढ़ो–
तुम्हारी राह में यह एक छोटा-सा बाँस का पुल है।

यहाँ पर कवि अपनी काव्य-यात्रा की सही दिशा निर्धारित करता है। यहाँ 'बाँस का पुल' एक ऐसे व्यक्ति का आत्मसंबोधन है जो संघर्षों को सहने की अनूठी शक्ति रखता है। भले ही पुल लचकता हो, चरमराता हो, ऐसा लगता हो कि अब टूटा पर टूटता नहीं वरन् निडर होकर आगे बढ़ने का आह्वान देता है। वह इस पार से उस पार जाने का साधन है। संग्रह की कविताओं में अधिकांश कविताएँ अपने साधनों और लक्ष्यों की व्यंग्यात्मक, असंगति और भीतर-बाहर की मजबूरियों की अभिव्यक्ति हैं। सर्वेश्वर का असली स्वर इन्हीं कविताओं में है। वे जिस वर्ग के कवि हैं उसकी वास्तविक पीड़ा और जीवनगत असंगति और तत्संबंधित व्यंग्य ही इन कविताओं में है।

संग्रह में कई तरह की कविताएँ हैं : कुछ रूमानी, दर्द और निराशा-भरी, कुछ प्रकृति-चित्र एवं कुछ मध्यवर्गीय जिंदगी की विविध स्थितियों की अनुभूति को वाणी देने वाली। कवि ने अनुभव किया है आज व्यक्ति समाज में रहकर भी अकेला है, भीड़ में मिलकर भी अजनबी है या भीड़ में अपने अस्तित्व को ही खो बैठा है। 'स्मृति', 'पूर्णिमा प्यार', बसंत स्मृति', 'बाढ़' 'सूरज', हेमंत की संध्या', साँझ एक चित्र', बसंत की शाम', आदि कविताएँ केवल प्रकृति चित्रण या दृश्य चित्रण के ही अंदाज में नहीं देखी-परखी जा सकती हैं, वरन् इनमें भी एक प्रक्रिया है, एक विशेष मनःस्थिति तो है ही, अनुभूति का खरापन और शैली की ईमानियत भी भरपूर है। इन कविताओं में प्रकृति दृश्य तो है ही, पर जिन विषयों पर ये कविताएँ लिखी गई हैं वे विषय भले ही पुराने हों उनके प्रति कवि की 'एप्रोच' नई है। विषय तो बड़ी मुश्किल से बदला करते हैं, परंतु उनके प्रति दृष्टि बदल जाती है। 'सूरज' हेमंत', और वसंत पर कई कविताएँ लिखी गई हैं, पर सर्वेश्वर ने इन्हें लिखकर एक नई मनःस्थिति भोगी है, नई चेतना दी है। शिल्प की दृष्टि से भी यह संकलन संपन्न कहा जा सकता है। इसमें बिंबों-प्रतीकों की स्मृद्धि ने नई अभिव्यक्ति की भाव-भंगिमाओं को नई कविता के ताजे मुहावरे में निष्पन्न किया है।

'एक सूनी नाव' कवि का तीसरा काव्य-संकलन है। इसमें सन् 1963 से 1966 तक की इकतालीस कविताएँ हैं। यह इनका पहला 'काव्य-संकलन' है जिसमें कवि व्यंग्य-वक्रोक्ति की कला को विकसित करने के साथ नई राहों की ओर बहुत तेजी से झपटता है। कवि ने स्वयं 'अनिर्मित पंथ प्यारे' को अपनाया है–

लीक पर वे चलें जिनके चरण दुर्बल और हारे हैं।

हमें तो जो हमारी यात्रा से बने ऐसे अनिर्मित पंथ प्यारे हैं।।

इसी विश्वास तथा संकल्प के साथ कवि इस यात्रा की शुरूआत करता है। यहीं से कवि व्यक्तित्व में अनुभवों की नई आंच दहकती है। नये छंदों को पुरानी लयात्मकता में ढालने का काम भी शुरू होता है। भाषा और छंद की कसावट में व्यंग्य भीतर, और भीतर प्रभाव जमाता जाता है। 'घंत-मंत' ऐसी ही कविताई का प्रतीक है–

दिल्ली हमका चाकर कीन्ह दिल-दिमाग भूसा भर दीन्ह।

शहरी जीवन की बिडंबनाओं विद्रूपताओं के अनुभव भाषा में सीधे आने लगते हैं। आज पक्की राजधानी की सड़कों का कवि कटु-सत्यों को पचा नहीं पाता है–'पढ़ी-लिखी मुर्गियाँ' उसी ढंग की कविता का प्रतीक है। किड़-किड़-किड़-किड़-कियाँ करती पढ़ी-लिखी मुर्गियों से–

बड़े-बड़े घरों के कचरे पर डोल रही/पता नहीं कहाँ-कहाँ गंदे पर खोल रही/

हर अपाच्य पाच्य इन्हें/ऐसी हैं प्रचुरगियाँ।

इस प्रकार की कविताओं में समसामयिक यथार्थ के साथ व्यंग्य-कला में बिम्बों-प्रतीकों को संयोजित कर अनुभव का पूरा खण्ड प्रस्तुत करने का शिल्प विकसित रूप में पाया जाता है। इस अनुभूति में आज के उच्चवर्गीय जीवन के विद्रूप, विकृत, भयावह पक्षों की आहटें सुनाई-दिखाई देती हैं।

यों संग्रह में कई रंग की कविताएँ हैं, किंतु संग्रह को पूरा पलटने पर लगता है कि सर्वेश्वर को खोजने के लिए, 'इस अपरिचित नगर में', 'लीक पर वे चलें', 'एक शहर', 'दुर्घटना', एक सूनी नाव', युद्ध स्थिति', व्यंग्य मत बोलो', अभिशाप', जैसी कविताएँ पढ़ने से काम चल जाएगा। 'सूनी नाव' का कवि एक ऐसा स्वतंत्र-चेता कलाकार है जो लीक से हटकर चलना चाहता है। कुल मिलाकर संग्रह की वे कविताएँ ही ज्यादा मूल्य रखती हैं, जिनमें जिंदगी के विविध संदर्भ कहीं व्यंग्य से, कहीं स्पष्ट और कहीं प्रतीकों से रूपायित हुए हैं। सर्वेश्वर ही सबसे बड़ी उपलब्धि कवितागत सहजता और आत्मीयता है। यह ऐसी उपलब्धि है जो उन्हें आभिजात्य शिल्प के हिमायती अज्ञेय से अलग करती है। उन्होंने अनुभूत कथ्य को इन्हीं दो गुणों के कारण सहज संप्रेष्य बना दिया है।

सन् 1966 से 1969 तक की कविताएँ 'गर्म हवाएँ' संकलन में संगृहीत हैं। विचार-दृष्टि तथा कथ्य की प्रौढ़ता पर ध्यान दें तो यह उनका श्रेष्ठ संकलन है। यहाँ कवि कविता के 'फ्राड' में नहीं कविता के संघर्ष में जीता हैं उन कवियों की तरह नहीं रहता है जो जीवन वे जीते न हों, उसी पर लिखते हों। यहाँ तो जीने और लिखने,

सोचे-समझने में आंतरिक रिश्ता सघनता पाता है। छोटी-बड़ी छत्तीस कविताओं का यह संकलन राजनीति और कविता को मिलाकर कह देता है–

अब मैं कवि नहं रहा, क काला झण्डा हूँ।
तिरपन करोड़ भौहों के बीच मातम में खड़ी है मेरी कविता।

सच्चे अर्थों में कविता का विद्रोही-स्वर इसी कृति से दृष्टिगत होता है जिसका आगे की यात्रा में निरंतर विकास हुआ है। प्रकृति के रंगीन चित्रों को जीने वाले, प्यार के लिए प्यासे कवि का संसार यहाँ उजड़ जाता है। 'कवि-पत्नी' की मृत्यु उसे भीतर से बेचैन किए है और बाहर की दुनिया का नरक उसे पीने लगता है। भीतर-बाहर की गर्म हवाएँ, इतनी तेजी से गुजरती हैं कि पुराना संसार नष्ट होकर नया मैदान आ जाता है जिसकी हर राह कठिन है क्योंकि बड़ी ऊबड़-खाबड़ और पथरीली है।

इस संकलन में धीरे-धीरे' यह खिड़की', 'स्थिति यही है', 'पंच धातु" बुद्धिजीवी', विशिष्ट ढंग की कविताएँ हैं। इनका कथ्य इतना सशक्त है कि पूरी की पूरी कविता पाठकीय संवेदना में 'समझ' के साथ हलचल मचा देती है। युग-जीवन की पद्धतियों, संस्कारों, आचरणों, चरित्रों और स्थितियों के पूरे संदर्भ व्यंग्य और आक्रोश के बिम्बों में उभर पड़े हैं। इसी संकलन के तीसरे भाग 'वे हाथ' में प्रकृति-संवेदना से जन्मी कविताएँ हैं। इनमें 'फिर वसंत ने मुझे डसा', 'प्यार', 'तुम्हारे लिए', 'वह चुम्बन', 'रेत की नदी', 'वे हाथ', आदि रोमानी भाव-बोध की कविताएँ हैं, किंतु इन कविताओं का भाव-बोध बेहद, सहज तथा खुलापन लिए होने के कारण छायावाद के भाव-बोध से अलग ढंग का है। श्रम में जुटे हुए हाथ कवि चूमना चाहता है और सभी कविताओं की उपमान योजना में कवि की मानसिकता का विशिष्ट रूप है :

हवा के झोकों को
टोकरों की तरह सिर पर रखे.
नाच रहे हैं पेड़–
झुको मत व्यथा के भार से
आकाश का साफा बाँधकर
सूरज की चिलम खींचता
बैठा है पहाड़
घुटनों पर पड़ी है नदी चादर-सी

जहाँ तक कविताओं के शिल्प का सवाल है, वह काफी सादा है। भाव जितने सादे हैं, शिल्प भी उसी तरह उनका सहचर बन गया है, किंतु कहीं-कहीं अन्विति का अभाव व शब्द-विस्तार और उनका अपव्यय खटकता है। कुछ प्रतीक भी ऐसे

हैं जो एक ही कविता में दुहरे अर्थ रखते हैं और इसी से अर्थ गड़बड़ हो जाता है। परंतु बिम्बों और उपमानों में काफी ताजगी है और कई उपयमान तो खासे नये और समसामयिक परिवेश और प्रेमानुभूतियों को उजागर करने में कवि और पाठक दोनों का साथ देते हैं। कुल मिलाकर संग्रह का वही निजी परिवेश है।

'गर्म हवाएँ' संग्रह के बाद कवि का नया काव्य-संकलन 'कुआनो नदी' इनकी काव्य-यात्रा को आगे बढ़ाता है। इसमें सन् 1969-1973 तक की सत्रह कविताओं को स्थान मिला है कुआनो नदी' नामक लम्बी कविता के तीन चरण-'कुआनो नदी' 'कुआनो नदी के पार', 'कुआनो नदी खतरे का निशान' है। कविता के इन तीनों चरणों में मामूली आदमी की त्रासी को शब्द मिले हैं। नदी भारतीय ग्रामीण चेतना की मंद धारा है जिसमें सब कुछ सहने पर भी विद्रोह की शक्ति नहीं आ सकी है। कवि कहता है कि जन-चेतना में एक जन-क्रांति का स्वर बुलंद हो; नीला दर्द रक्त की लालिमा में फूट पड़े। अपने व्यापक अनुभवों को कवि ने इस कविता में छानकर एकत्रित कर दिया है। इस दृष्टि से नई कविता की तमाम लंबी कविताओं में इन कविता का अपना अलग व्यक्तित्व बनता है। इसी के साथ यह भी कहा जा सकता है कि ग्रामीण दशा को समझने में 'कुआनो नदी' अपने ही ढंग की प्रथम लंबी कविता है। एक प्रकार से यह ग्रामीण पिछड़ेपन, गरीबी-भूखमरी का जीवन्त इतिहास है, क्योंकि कवि इस देश के गरीब ग्रामों से सीधा जुड़ा है। उन्हें वह ठीक से समझता है। इस सबका परिणाम है कि 'कुआनो नदी' का दर्द ग्रामीण संवेदना से जुड़े आदमी के लिए आज भी दाँत का दर्द है।

पूरी कविता में शब्दों का इतना सजग प्रयोग किया गया है कि बिंब-धर्मिता में संप्रेषण-व्यापार बढ़ गया है। संकेतगत अस्पष्टता तथा अतिरिक्त दुरूहता की कमी ने इस कविता को पाठक-धर्मिता दी है। 'रूपक' का प्रयोग आंलकारिक वैचित्र्य के लिए न होकर कथ्यगत नूतन अन्वेषण का अंग है। निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि 'कुआनो नदी' गाँव में बसे हजारों गरीबों की स्थितियों और विवशताओं को नवीन प्रबन्ध-स्थापत्य में प्रस्तुत करती है, जिसमें कवि के बचपन से लेकर आज तक के सभी अनुभव नवीन वैचारिक प्रतीकों और बिम्बों में सृजनात्मक धरातल पर व्यक्त हुए हैं।

'जंगल का दर्द' कवि का सन् 1976 ई० में प्रकाशित छठा काव्य-संकलन है। इसमें आपात-स्थिति के दौरान लिखी गई अट्ठावन कविताएँ हैं। जिनमें ज्यादातर कविताएँ नये प्रतीकों द्वारा समय की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक स्थितियों को कविता में उतारती है। इस जमे हुए परिवेश की शीतल मार आँख के आँसू को कपोलों पर जमा देती है। शब्द कंठ में ही बर्फ हो जाने पर भी स्मृतियाँ आग की तरह धधकती है और कवि इस बर्फीले माहोल में रोशनी तथा ताप देने के लिए

विचारों की मशाल लेकर चल पड़ता है। यह मशाल गुर्राते हुए भेड़ियों, काले तेंदुओं को खदेड़ने के लिए जलाई गई हैं दुःखी, उदास, फीके, निस्तेज, क्षोभ और क्रोध भरे चेहरे इसी मशाल के आश्रय अपने को बचा सकते हैं। अशिक्षित जनता को कवि 'आग प्रतीक से पहचानता है तथा उन्हीं की आग के ताप से नई चेतना खोजता है:

मैंने देखा, स्लेट पर चलती
उनकी उँगलियाँ
लौ में बदल रही हैं
और पूरा शब्द लिखते ही
उसका हाथ मशाल में बदल गया है।

संक्षेप में यह काव्य-संग्रह बिंब-बहुतल भाषा में सर्वाधिक सशक्त कविताओं का संग्रह है। आपात-स्थिति के दौरान पूरा देश जिन अनुभवों से गुजरा है, उनका पूरा सामाजिक, ऐतिहासिक हाशिया उन कविताओं में प्रतिध्वनित है। यह कविताएँ हमें राजनीति पर, समाज पर बहस के लिए आमंत्रण देती हैं। भारत के सामाजिक करण के अंतर्विरोध को वैचारिक स्तर पर रखती हैं। इस प्रकार इनमें सामाजिक, राजनीतिक अन्वीक्षा का सिलसिलेवार ब्यौरा है। नया बुद्धिजीवी आज के निरंतर विचारधारात्मक विवाद में जूझकर ही जीवन के कुछ तथ्य बटोर सकता है। इस प्रकार यह कविताएँ वैचारिकता के समृद्ध स्तर का संकेत देती हैं। युगीन यथार्थ और उनकी चेतना में आए परिवर्तन से नया साक्षात्कार कराती हैं।

'खूँटियों पर टंगे लोग' इका सातवाँ काव्य-संग्रह है जिसमें शामिल अधिकतर कविताएँ 1976 से 1981 के बीच लिखी गई हैं। इन कविताओं में नियति और स्थिति को स्वीकार कर लेने की व्यापक पीड़ा है। यह पीड़ा कवि के आत्म से शुरू होकर समाज तक जाती है और फिर समाज से कवि के आत्म तक जाती है और इस तरह कवि और समाज को पृथक न कर, एक करती हुई उसके काव्य-व्यक्तित्व को विराट
कवि और समाज को पृथक न कर, एक करती हुई उसके काव्य-व्यक्तित्व को विराट
कर जाती है। कवि न खुद से काटकर समाज को देखता है, न समाज से काटकर खुद को। इस तरह वह समग्रता में जीता और रचता है। इसीलिए इस संग्रह में घोर सामाजिक, राजनीतिक यथार्थ से जूझने वाली कविताएँ भी हैं और उसके निजी जीवन की करुण आहटें भी, लेकिन कविताएँ दोनों ही प्रकार की हैं–अपनी अलग पहचान बनाती हुई, जिसके कारण सर्वेश्वर पिछले तीस वर्षों से हिन्दी काव्य में ऐसे मुकाम पर खड़े हैं कि उनके बिना समकालीन हिन्दी कविता की चर्चा अधूरी रहेगी।

सम्प्रेषण की सहजता सर्वेश्वर की कविताओं का मुख्य गुण रहा है और इसकी कलात्मक साध इस संग्रह में और निखरी है। एक समर्थ कवि के स्पर्श से चीजें वह

हींन रह जाती जो हैं–कोट, दस्ताने, स्वेटर–सबके-सब युग की चुनौतियों से टकराकर क्रांति, विद्रोह और विरोध से जुड़ जाते हैं। प्रतीकों और बिम्बों का ऐसा सहज इस्तेमाल दुर्लभ है। 'दास्ताने' कविता से एक उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें से कवि की क्रांतिकारिता का परिचय मिलता है :

तुम सोचते होगे
वह तो सहने के लिए ही बना है
बेजान है, उसकी रंगों में खून नहीं है
लेकिन याद रखो–
अन्याय और यातना की सीमा
जब पार हो जाती है
तो बेजान में ही सबसे पहले जान आती है।

इस प्रकार 'खूँटियों पर टंगे लोग' की कविताएँ सर्वेश्वर की काव्य-यात्रा को और आगे बढ़ाती हैं तथा समकालीन हिन्दी-काव्य को भी, जिसका चरित्र मूल्यों के अभाव और व्यवस्था के दबाव में तेजी से बदल रहा है। यह बदलाव बिना किसी अतिरिक्त आग्रह के सर्वेश्कर के इस संग्रह में आसानी से देखा जा सकता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि नयी कविता के इतिहास में सर्वेश्वर का कवि कर्म इस दृष्टि से प्रतिष्ठा के विशिष्ट पद का अधिकारी है कि उन्होंने नई कविता को नया मुहावरा दिया, नया कथ्य और शिल्प दिया है।

❑❑❑

6. "साठोत्तरी कविता की वस्तु चेतना में सामसामयिक संदर्भ"

कविता की वस्तु चेतना के अंतर्गत एक ओर वे अनुभव आते हैं जिन्हें कवि जीवन के अनेक संदर्भों में हासिल करता है दूसरी ओर उन अनुभवों से विकसित जीवन दृष्टि भी वस्तु का एक महत्त्वपूर्ण अंग होती है। साठोत्तरी कविता की वस्तु पिछली कविता की वस्तु से बहुत कुछ बदली हुई है। कविता के लिए बहुत से वर्जित क्षेत्र और विषय उसमें पहली बार कविता की वस्तु चेतना बन सके हैं। प्रस्तुत विषय का अध्ययन करते समय इसमें अभिव्यक्त जीवन मूल्यों के बदलते संदर्भ, यथार्थ बोध, राजनीतिक चेतना, सौन्दर्य बोध आदि का अध्ययन आवश्यक होगा।

जीवन मूल्यों के बदलते संदर्भ

यद्यपि दर्शन, धर्म, नीति, इतिहास संस्कृति कला, समाजशास्त्र आदि ज्ञान शाखाओं के अपने निजी मूल्य है। लेकिन ये समग्र जीवन के व्यापक मूल्यों से अन्तत: भिन्न नहीं हैं। समाज-शास्त्रियों के अनुसार मूल्य एक सामाजिक तथ्य है। यह व्यक्ति और समाज के विचार, अनुभव या क्रिया से सीधा जुड़ा हुआ है। जीवन-मूल्यों की समग्रता विचारधारा कही जाती है और इसका कविता की वस्तु से बड़ा घनिष्ठ संबंध होता है।

साठोत्तरी कविता में व्यक्ति स्वातंत्र्य अजनबीपन, अकेलापन, मृत्युबोध आदि अस्तित्वादी स्वर सुनने को मिल जाते हैं। इसमें केवल व्यक्ति स्वातन्त्र्य को ही जीवन-मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। एक युवा कवि भीड़ में अपने अस्तित्व को गुम न होने देने के लिए सचेष्ट है, उसमें अपने अस्तित्व की अलग पहचान बनाने की छटपटाहट सक्रिय है–

"मैं आदमी बनकर जीना चाहता हूँ
न कि एक क्रम-संख्या
और जो कुछ भी चाहता हूँ कल नहीं
आज पाना चाहता हूँ"[1]

जहाँ तक अजनबीपन अकेलापन और मृत्युबोध की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, ऐसा लगता है ये अस्तित्वादी प्रभाव न होकर परिवेश की भयावहता और कठिनता की प्रतिक्रियाएँ हैं।

मृत्युबोध के स्वर युवा कविता में क्षीण हैं। मृत्यु का आतंक प्रायः व्यवस्था के आतंक और क्रूरता की ओर इंगित करता है। ईमानदारी, परोपकार, सत्य और मित्रता आदि का गणना व्यक्तिगत मूल्यों के अंतर्गत होती है। साठोत्तरी कवि ने इनके खण्डित हो जाने की स्थितियों का वर्णन किया है। युवा कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि आज के परिवेश में ईमानदारी दु:ख का कारण है और झूंठ बोलना एक अनिवार्यता है। कल तक अप्रमाणिक कहे जाने वाले दुर्गुण आज के सर्वमान्य मूल्य बन चुके हैं। सत्य का आज के युग में उपहास किया जाता है। साठोत्तरी कवि ने वैयक्तिक जीवन-मूल्यों पर जब भी विचार किया है, उन पर कड़ी चोट की है। उनका विचार है कि मौजूदा परिवेश में घिसे-पिटे और रूढ़िगत मूल्यों का कोई औचित्य नहीं है।

साठोत्तरी कविता में आर्थिक, सामाजिक शोषण के प्रति तीखी चेतना है। वह पूंजीपतियों, नेताओं, मठाधीशों द्वारा किये गए शोषण को नकार कर आर्थिक समानता, बन्धुत्व और सहयोग आदि मूल्यों पर बल देता है। शोषण के नए तरीकों और साजिशों से युवा कवि अनभिज्ञ नहीं है। अब वह किसी प्रकार के सुधार या संस्कार में विश्वास न करके आमूलचूक परिवर्तन का हामी है।

अंतर्राष्ट्रीयता और विश्वबंधुत्व

मार्क्सवाद तथा आधुनिक विचारधाराओं के परिणामस्वरूप साठोत्तरी कविता में राष्ट्रीयता या देशभक्ति जैसे संकीर्ण मूल्यों के स्थान पर अंतर्राष्ट्रीयता और विश्वबंधुत्व के मूल्य विकसित हुए हैं। बहुत से युवा कवियों ने अपने देश के वर्तमान स्वरूप को देखते हुए उसके प्रति घृणा प्रदर्शित की है अर्थात देशभक्ति के मूल्य का तिरस्कार किया है। कैलाश वाजपेयी की कविता 'तरसे हुए देश में' इस देश में पानी तक शुद्ध न मिलने, बुद्धिजीवियों के अय्याश होने और विदुषकों के हाथ में शासनतंत्र होने पर खुद को भारतीय कहने में लज्जा का अनुभव किया गया है। ऐसा-भी नहीं है कि साठोत्तरी कविता में देशानुराग का स्वर बिल्कुल अनुपस्थित ही है रामदरश मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, नीलाश आदि कवियों ने देश की तमाम बदसूरती के बाबजूद उसके प्रति अपना लगाव प्रदर्शित किया है। कुल मिलाकर नया कवि पुरानी मान्यताओं के स्थान पर अशोषण, क्रांति, नैतिक मूल्यों का अस्वीकार आदि धारणाओं को स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है।

शोषण के प्रति आक्रोश

साठोत्तरी कविता राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक शोषण के विभिन्न पहलुओं को पहचानते हुए उनसे मुक्त होने का आग्रह करती है। आदमी को विवश और गुलाम बनाने की पूंजीवादी और साम्राज्यवादी साजिशों से युवा कवि अनभिक्ष नहीं है। वह पुरानी पीढ़ी के शोषकों को चेतावनी देना चाहता है कि वे जनसाधारण को भ्रम में रखकर अब और अधिक दिनों तक शोषण का कुचक्र नहीं चला सकते।

युवा वर्ग की समस्याएँ : साठोत्तरी कविता सही मायने में युवा कविता है, अत: उसमें युवा वर्ग की तकलीफ और परेशानी का जिक्र होना अस्वाभाविक नहीं है। साठोत्तरी कवियों ने युवा समस्याओं के दो विशिष्ट बिंदुओं को विशेष रूप में रेखांकित किया है। एक तो उन्होंने पर्याप्त शिक्षा और सामर्थ्य के बावजूद, बेरोजगारी का अभिशाप झेलती युवा पीढ़ी की मुश्किलों को न केवल समझा है अपितु उनके लिए जिम्मेदार तत्वों की शिनागत भी की है। दूसरा बिंदु युवा विद्रोह का है जो युवा पीढ़ी को महत्त्वाकांक्षाओं और स्वप्नों को कुचलने की प्रतिक्रिया में जन्मा है।

सौन्दर्य बोध : बदलते प्रतिमान

साठोत्तरी कवियों के सौन्दर्य निरूपण के संक्षिप्त विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुँचना असंगत नहीं है कि उन्होंने सौन्दर्य को स्वत: मूल्य के रूप में स्वीकार नहीं किया है। उनके लिए सौन्दर्य वस्तु का एक गोण और अमहत्त्वपूर्ण अंग है। अनेक समर्थ कविताओं में नारी, प्रकृति आदि की सुंदरता बिल्कुल अनुपस्थित है। वस्तु और भाव के सौन्दर्य के स्थान पर विचारों का सौन्दर्य अधिक है। सौन्दर्य को जो चित्र मिलते हैं, उनके साथ सामाजिक प्रतिवद्धता का भाव अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। बिम्बवादियों की तरह केवल सौन्दर्य के लिए कुछ पंक्तियाँ गढ़ देना युवा कवियों की रुचि के प्रतिकूल पड़ता है। सूक्ष्म वायवीय और अतीन्द्रिय सौन्दर्य चित्रण से प्राय: रहित युवा कविता का सौन्दर्य निरूपण की तुलना में अधिक स्वस्थ, व्यापक और प्रांसगिक है। लोक-जीवन के सौन्दर्य चित्रों से न केवल साठोत्तरी कविता की जन-जीवन से निकटता प्रमाणित होती है अपितु उनकी ताजे और कुण्ठा-बिहीन सौन्दर्य के प्रति रूझान की पुष्टि भी होती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जीवन मूल्यों का विघटन, बामपंथी राजनीतिक चेतना और विचार तत्व की प्रधानता साठोत्तरी कविता की वस्तु के तीन प्रमुख आयाम है। युवा कवियों ने कुलीनता, जातिगत श्रेष्ठता, परंपरागत आर्थिक शोषण, आस्तिकता, राष्ट्रीयता आदि जीवन-मूल्यों के विघटन को बड़े उत्साह के साथ चित्रित किया है। नैतिक वर्जनाओं और निषेधों के प्रति भी उनकी काव्य-दृष्टि पर्याप्त आक्रामक है।

गलत और अप्रांसगिक मूल्यों के स्थान पर बंधुत्व शोषण का विरोध क्रांति आदि मूल्यों को उन्होंने अपना समर्थन दिया है। कुछ अकविता संप्रदाय के कवियों ने स्वच्छंद भोग, अकेलापन और अजनबीपन आदि को मूल्य स्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। लेकिन उनका स्वर बड़ा क्षीण है। नए मूल्यों की स्थापना करने में युवा कवि प्रयत्नशील है।

राजनीति को कविता की वस्तु में समाहित करने के प्रश्न पर नई कविता के युग में जो द्वंद्व था वह साठोत्तरी हिन्दी कविता तक आते-आते एक विवादहीन निर्णय की स्थिति पर पहुँच जाता है। चाहे प्रगतिशील कवि है, चाहे अकवि सभी निर्द्वन्द्व होकर राजनैतिक प्रश्नों को उठाते हैं। साठोत्तरी कविता की राजनीति चेतना वामपंथी की ओर उन्मुख है। अधिकतर कवि यहाँ तक की अकवि भी वामपंथी राजनीति के प्रति अपना रूझान प्रकट करते हैं। धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, कुमार विकल ऋतुराज, चंद्रकान्त देवताले आदि कवियों का बहुत बड़ा वर्ग देश-विदेश को समकालीन राजनीति की मीमांसा करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचता प्रतीत होता है कि केवल वामपंथ ही राजनीति की सही दशा है और इसी के जरिये पूंजीवादी और साम्राज्यवादी ताकतों के शोषण को दूर किया जा सकता है। युवा कवियों ने गणतांत्रिक व्यवस्था को प्राय: संदेह की दृष्टि से देखा है। वे इस व्यवस्था की उपलब्धियों से असंतुष्ट और इसकी न्यूनताओं से चिंतित प्रतीत होते हैं। अत: वे मौजूदा व्यवस्था के स्थान पर समाजवादी शोषणहीन व्यवस्था का विकल्प रखते हैं।

साठोत्तरी कविता की वस्तु विचार-प्रधान है। उसमें जीवन के बहूमुखी यथार्थ को बिंबों, प्रतीकों या फेंटेसी के जरिए न उभारकर प्राय: विचार के माध्यम से बुना गया है। एक ओर इसमें आदमी के दु:ख, दर्द की अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर शोषण और वर्ग भेद के प्रांत तीखा आक्रोश। उसकी वस्तु में प्रकृति प्राय: अनुपस्थित है अत: इसका सौन्दर्य बोध भी मानव जीवन के इर्द-गिर्द ही घूमता है। कुल मिलाकर साठोत्तरी कविता की वस्तु प्रामाणिक अनुभवों और प्रगतिशील जीवन-दृष्टि के तालमेल से गढ़ी गई है। यह पूर्ववर्ती कविता की वस्तु के मुकाबले में जीवन के अधिक निकट और विश्वसनीय है।

सन्दर्भ सूची

1. निषेध : 'जनतंत्र और मैं'–कुमार (पृ. 165)

❑❑❑

7. सातवें दशक की कविता : विविध काव्यान्दोलन

सातवें दशक की हिन्दी कविता के अभ्युदय में रंग-मंच पर और नेपथ्य में जो राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक कारण एवं विभिन्न विचारधाराएँ सक्रिय रहीं उनसे एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि कवि की मानसिकता को उस वातावरण ने बुरी तरह प्रभावित तथा प्रताड़ित किया। इसी कारण समाज, व्यवस्था, परंपरा, धर्म नीति, संस्कृति, सभ्यता आदि के प्रति उसमें अस्वीकार, आक्रोश और विद्रोह का स्वर उभर कर आया। कवि के सामने एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न था अपनी घुटनभरी अभिव्यक्ति का। इसके लिए उसने नये-नये आंदोलनों और नामों की बैसाखियों का सहारा टटोला। सातवें दशक की कविता का इतिहास विभिन्न नामों, वादों-नारों, और आंदोलनों का इतिहास है क्योंकि इस काल में कविता जितने नये नामों और विशेषणों से जुड़ी इतना किसी काल में नहीं। अनेक नये और पुराने कवि अपना-अपना अलग घोषणा-पत्र और नामपट्ट लेकर कविता क्षेत्र में कूद पड़े। इन कविता आंदोलनों को अनेक छोटी-छोटी पत्रिकाओं ने प्रकाशित तथा प्रचारित किया। इन आंदोलनों के पीछे हमें तीन प्रकार के कवि दिखाई पड़ते हैं। एक ग्रुप उन असंतुष्ट कवियों का था जो न तार सप्तक ने स्वीकार किए थे तथा न उन्हें नयी कविता में ही स्थान प्राप्त हो सका था। दूसरी श्रेणी में वे कवि आते हैं जो स्थापित होने के लिए नई कविता के विरोध में आये थे। तीसरे प्रकार के वे कवि थे जिन्होंने साठ के बाद ही लिखना प्रारंभ किया था जिनमें कुछ खेमेबाजी के विरोध में थे। यह बता देना आवश्यक है कि उपर्युक्त तीनों प्रकार से कवियों का विभाजन नहीं किया जा सकता है, क्योंकि एक-एक कवि कई-कई आंदोलनों से जुड़ा हुआ है। सन् 60 के बाद कविता में आंदोलनों की जो बाढ़ आई उसे डॉ० जगदीश गुप्त ने व्यंग्यात्मक लहजे, में 'किस्म किस्म की कविता' नामक शीर्षक लेख में इस प्रकार गिनाया है—सनातन सूर्योदयी कविता, अस्वीकृत कविता, अकविता, कविता, अन्यथावादी कविता, विद्रोही कविता, क्षुत्कातर कविता, कबीर पंथी कविता, समाहारात्मक कविता, विकविता, अकविता, अभिनव कविता, नाटकीय कविता, ऐण्टी कविता, निर्दिशामयी कविता, ए.सर्ड कविता

गीत कविता, नवप्रगतिवादी कविता सांप्रतिक कविता, कोलाज कविता, बोध कविता, मुहूर्त की कविता, अति कविता, प्रतिबद्ध कविता, युद्ध कविता, नंगी कविता, सहज कविता, आँख कविता इत्यादि।

इन नामों के बाद कुछ अन्य नामों का भी उदय हुआ जिनमें कुकविता, अति कविता, आज की कविता, पोस्टर कविता तथा विचार कविता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

❑❑❑

8. साठोत्तरी हिन्दी कविता के सरोकार : एक दृष्टि

'आंगन के पार द्वार' के पुरस्कृत होने के साथ नई हिन्दी कविता का एक दौर पूरा हो जाता है। यह आकस्मिक नहीं कि दस-पंद्रह वर्षों के अनवरत विरोध के बाद सहसा सन् 1965 में नई कविता की एक प्रतिनिधि कृति राजकीय पुरस्कार के योग्य मान ली गई। वस्तुतः इसके पीछे इतिहास का एक निश्चित तर्क है। यह संयोग तब और भी आश्चर्यजनक हो उठता है जब हम 'आंगन के पार द्वार' के साथ ही इस वर्ष की बंगला की पुरस्कृत काव्यकृति 'यतो दुरेह जाइ' को भी रख देते हैं। इन दोनों कृतियों के रचयिता (अज्ञेय तथा सुभाष मुखोपध्याय) भारतीय कविता को उस आधुनिक धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसने स्वच्छंदतावाद का विरोध किया था और उसके स्थान पर व्यक्ति के निजी और प्रामाणिक अनुभव को प्रतिष्ठा दी थी। आरंभ में इस धारा में विद्रोह के तत्व स्वभावतः अधिक थे। पर धीरे-धीरे कलात्मक प्रौढ़ता के साथ वे कम होते गये और सन् 60 तक आते-आते उसकी भाषा और अनुभववादी दर्शन में स्थिरता आने लगी। जीवन की सारी समस्याएँ सिमटकर कवि अथवा कलाकार की सृजन-प्रक्रिया की समस्याएँ बन गई। संभवतः नव लेखन के क्षेत्र में यह सौन्दर्यवादी रूझान कुछ दिनों तक और चलता रहता—यदि अकस्मात सन् 1962 के राष्ट्रीय संकट ने साहित्य तथा राजनीति में एक ही साथ बहुत से मोहक आदर्शों और ख़ोखले काव्यात्मक शब्दों के प्रति हमारे मन में एक विराट शंका न भर दी होती। परिणाम यह हुआ कि कुछ आधुनिक विचारकों, और विशेष रूप से नई पीढ़ी के रचनाकारों के भीतर नवलेखन के इस सौन्दर्यवादी रूझान के विरूद्ध एक सीधी प्रतिक्रिया हुई। सृजनात्मक विद्रोह के ये तत्व, जो अज्ञेय और सुभाष मुखोपध्याय की कृतियों से गायब हो गये थे, इन रचनाकारों की कृतियों से उभरकर आने लगे। इस अंतर के साथ कि इनके विद्रोह के पीछे काम करने वाला मानसिक विक्षोभ 'साहित्यिक' कम और 'ऐतिहासिक अधिक है।' इतिहास का यह एक विचित्र तर्क है कि पुराने प्रतिष्ठा प्राप्त आलोचक किसी नई प्रवृति को तब तक स्वीकार नहीं करते, जब तक स्वयं इतिहास के भीतर से ही कोई नव्यतर विद्रोही प्रवृति उसके समानान्तर नहीं उठ खड़ी होती। ऐसी स्थिति में उन्हें अपना पक्ष चुन लेने में सुविधा

होती है। इस प्रकार की अधिकांश साहित्यिक आलोचना इसी सुविधाजनक चुनाव का परिणाम है। इस पृष्ठभूमि में रखकर देखें तो 'आंगन के पार द्वार' और 'यतो दुरेह जाइ' का पुरस्कृत होना आश्चर्यजनक चाहे लगे, आकस्मिक बिल्कुल नहीं लगेगा।

इस परिवर्तन के स्वरूप को समझने के लिए उस स्थिति की व्याख्या आवश्यक है, जिसमें आज का कवि रचनागत है। 'रचना' शब्द को मैं यहाँ रेखांकित करना चाहूँगा क्योंकि आज के कवि के निकट इस शब्द की पवित्रता और महत्त्व का जादू काफी हद तक टूट चुका है। वह जानता है कि वह जो कुछ 'रचता' है वह उसे किसी भी अर्थ में कोई वैशिष्ट्य नहीं प्रदान करता, न ही उसके द्वारा वह अपने आस-पास की तर्कहीन स्थिति को कोई संगति ही दे पाता है। यह आज की मानवीय स्थिति की चर्म परिणति है कि कवि के निकट स्वयं सृजन-क्रिया ही भयावह हो उठी है। फिर भी वह 'रचने' की इस असुखद स्थिति से मुक्त नहीं हो पाता। क्योंकि इसके सिवाय इस निरर्थकता से उबरने का कोई उपाय भी नहीं हैं हुआ यह है कि इस बीच कवि की परंपरागत प्रतिमा अचानक खंडित हो गई है। वह न तो अब दृष्टा है, न समाज का विशिष्ट नागरिक। यहाँ तक कि अब वह अजनबी भी नहीं है, क्योंकि वह चीजों को पहचानता है और इस पहचान के परिणामों से बचने की कोशिश नहीं करता। इस स्थिति का प्रत्यक्ष प्रभाव तो यह है कि आज के कवि का मैं, एकवचन प्रथम पुरुष का मैं, न होकर 'हम' की तरह अमूर्त और व्यापक हो गया है और ऐसा किसी बड़े आदर्श के प्रति आग्रह के कारण नहीं, बल्कि अमानवीकरण की एक बृहत्तर प्रक्रिया के अंतर्गत अपने आप और बहुत कुछ कवि के अनजाने में ही हो गया है।

नये कवि की इस विडंबनापूर्ण स्थिति का असर उसकी कविता पर यह पड़ा कि वह वस्तु के आकर्षण से खिंचकर गद्य के और निकट आ गई। उसने अपने लिए 'विचार नहीं, 'केवल वस्तु' का कठिन मार्ग चुना। फलतः एक नये प्रकार के वस्तु-बोध का उदय हुआ, जो वस्तु स्थिति का सामान्य बोध न होकर वस्तु की स्वतंत्र सत्ता का विशिष्ट बोध है। इससे पूर्व शायद वस्तु की सार्थकता अथवा निरर्थकता को इतनी तीव्रता के साथ कभी नहीं महसूस किया गया था। कुर्सी, टेबल, जूते, पेंसिल और लेंपपोस्ट पहली बार कविता में मानवीय अनुभूतियों के सहभोक्ता बनकर आए। पूर्ववर्ती पीढ़ी की कविता में दैनिक जीवन की वस्तुएँ प्रायः एक अंलकारिक प्रयोजन की पूर्ति के लिए प्रतीकात्मक रूप में लायी जाती थीं और उनके प्रति कवि की रागात्मक प्रतिक्रिया लगभग निश्चित होती थी। पर अब एक कुर्सी तथा टेबल अपने स्वतंत्र आकार की विलक्षणता के साथ मानवीय अस्तित्व की सक्रिय साझीदार बन गई हैं। नया कवि जाने-अनजाने प्रसिद्ध जर्मन कवि गाटफ्रीड बेन की इस पंक्ति को स्वीकार करके चलता है कि यदि तुम अपने आपको वस्तुओं से स्वतंत्र

कर लोगे तो तुम्हें एक रंगहीन नियति का सामना करना पड़ेगा। अतः वह हर क्षण महसूस करता है कि वह वस्तुओं के एक विशाल जंगल में सांस ले रहा है। यदि इस त्रासकारी अनुभव के दूरव्यापी स्रोतों की तलाश की जाए तो उसके सूत्र निस्संदेह सार्त्र के अस्तित्ववाद में मिल सकते हैं, जिसके अनुसार वस्तुएँ अपने शुद्ध विधेयात्मक रूप में एकदम तटस्थ, अनिर्दिष्ट और किसी भी भविष्यवाणी से परे, अपना लक्ष्य चुनने के लिए बिल्कुल स्वतंत्र होती है। पहले कवि एक नकारात्मक प्रक्रिया से उन्हें इस प्रकार रूपांतरित कर लेता था कि वस्तु उसके लिए वस्तु ही नहीं रह जाती थी। नया कवि उन्हें रूपांतरित नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि उस प्रक्रिया से वस्तुओं की मूलभूत अनिश्चियता को बदला नहीं जा सकता। साथ ही वह यह भी जानता है कि सृजन के स्तर पर एक ऐसी चीज का सामना करना, जिसकी प्रकृति के बारे में पहले से कुछ भी नहीं कहा जा सकता, अपने आप में खतरनाक है और एक विशेष प्रकार के साहस की मांग करता है। अतः कभी-कभी वह दुस्साहस की हद तक साहस का परिचय देता है, विशेषतः ऐसी चीजों के बारे में जिनका संबंध उच्चवर्गीय नैतिकता और सौन्दर्य-बोध से होता है। इस अर्थ में वह शुद्ध कविता के विरूद्ध है और स्वयं अपनी नियति से प्रतिबद्ध हो अथवा नहीं, अपने आस-पास की वस्तुओं की नियति से प्रतिबद्ध अवश्य है।

यदि नये कवि की केंद्रीय मनोदशा की व्याख्या की जाए तो वह इलियट-पाउण्ड आदि कवियों की अपेक्षा काफ्का और ब्रेरवत आदि गद्य-लेखकों के 'मूड' के अधिक निकट पाया जायेगा। यही कारण है कि उसकी कविता आधुनिक उपन्यास की अनेक विशेषताओं को अपने भीतर समेटती चली जा रही है। वह एक सामान्य दृश्य को भी उपस्थित करता है तो लगता है जैसे आंतरिक द्वन्द्ध से उभरती हुई एक पूरी पट-कथा को प्रस्तुत कर रहा हो। उसके चित्र और संकेत किसी गहरे षड्यंत्र को छिपाए हुए नाटकीय पात्र की तरह बड़ी तेजी से आते हैं और फिर गायब हो जाते हैं। शायद आज के तनावपूर्ण नागरिक जीवन को उसकी निकटतम भाषा में व्यक्त करने के लिए यह आवश्यक था कि कविता को आधुनिक उपन्यास की अपेक्षाकृत ठोस भूमि पर उतारा जाए और यदि नया कवि अपने युग के काव्यात्मक आदर्शों से हटकर काफ्का और ब्रेखत की गद्यात्मक मनोभूमि के निकट पहुँचने का प्रयास कर रहा है तो इसे कविता का अन्यथाकरण नहीं, बल्कि उसके विकास की स्वाभाविक दिशा ही मानना चाहिए। रघुवीर सहाय, श्रीकान्त और कुछ दूसरे नए कवियों की कविताओं को पढ़कर हम अपने को जिस परिवेश के बीच पाते हैं उसकी ऐतिहासिक जटिलता और वस्तुगत रहस्यमयता का निकट संबंध यदि किसी के साथ जोड़ा जा सकता है तो वह अज्ञेय और शमशेर की कविताओं के साथ नहीं, बल्कि 'लंदन की एक रात' और हत्यारे जैसी कथा-कृतियों के साथ होगा। इन कवियों की कविता एक

संसक्त मनः स्थिति की कविता है, जिसमें राजनीतिक स्थिति को मानवीय विवशताएँ और आर्थिक दैत्य की तैरती हुई छायाएँ भी देखी जा सकती है। प्रकृति और प्रेम जैसे विषयों के प्रति इन कवियों की प्रतिक्रिया एकदम बदल गई है। इनकी दृष्टि में प्रेमिका की प्रतीक्षा, वसंत की प्रतीक्षा और अखवार की प्रतीक्षा में कोई मूलभूत अंतर नहीं रह गया है। मानव के हँसने, बोलने और शाम को लौटकर अपने घर आ जाने जैसे चिरपरिचित कार्य भी उन्हें चमत्कार जैसें लगते हैं। सन् 60 के बाद की कविता इन्हीं सीधे-साधे पर खौफनाक चमत्कारों की काव्यात्मक प्रतिक्रिया है।

मोटे तौर पर इस बीच लिखी जाने वाली कविताओं का विकास दो दिशाओं में हुआ है। पहला कविता से अकविता की ओर और दूसरा-शुद्ध कविता से एक खास किस्म की प्रतिवद्ध कविता की ओर। ये दोनों प्रवृतियाँ वस्तुतः अलग-अलग न होकर उस मूल प्रवृति के ही दो रूप हैं, जो कविता और जीवन के हर स्तर पर वस्तुओं के स्वीकृत अर्थ को अस्वीकार करती है। 'अस्वीकार' का यह स्वर कुछ कवियों में तेज है, कुछ में धीमा। कुछ में वह इतना सूक्ष्म है कि सुनाई नहीं पड़ता। पर शायद यही एक बात है जो उन्हें स्पष्टतः अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से अलग करती है। उनकी प्रतिबद्धता किसी राजनीतिक मतवाद से परिचालित होने में नहीं, बल्कि आज की तीव्र गत राजनीतिक स्थिति और उसकी सारी तार्किक परिणातियों को अपनी नितान्त व्यक्तिगत और छोटी से छोटी अनुभूतियों के साथ सम्बद्ध कर लेने में है।

भाषा के स्तर पर इन कवियों में शब्दों के प्रयोग की प्रवृति अधिक दिखाई पड़ती है जो अकाव्यात्मक तथा आघात देने वाले होते हैं। कविता से अकविता की ओर बढ़ने की प्रवृति का सबसे प्रत्यक्ष उदाहरण इनके शब्दों के चुनाव में ही दिखाई पड़ता है। इनका ज़ोर ऐसे शब्दों के चुनाव पर अधिक है, जिनकी ध्वनि गणित के चिह्नों की तरह ठीक और 'अचूक' हो। इस प्रयास में इस बात की पूरी संभावना थी। कि उसके भीतर से एक ऐसी कविता का जन्म हो, जो भाषा अथवा प्रेषणीयता के आंतरिक रहस्यों का काव्यात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करें। पर इस प्रवृति का एक हल्का सा संकेत केवल कुंवर नारायण की कुछ कविताओं में ही मिलता है। अधिकांश कवियों की कोशिश यही है कि शब्दों का चुनाव ऐसे क्षेत्रों से और इस प्रकार किया जाए कि संपूर्ण परिस्थिति ही भाषा बन जाए। जहाँ तक प्रेषणीयता का प्रश्न है, इन कवियों का उस संबंध में कोई दावा नहीं है। वस्तुतः उनके निकट प्रेषणीयता की स्थिति बहुत सुखद और स्वाभाविक है भी नहीं। अंग्रेजों के युवा नाटककार हेराल्ड पिण्टर ने कहीं कहा है कि आदमी यदि अपनी बात को दूसरे तक नहीं पहुँचा पाता तो इसलिए नहीं कि उसमें संप्रेषण की क्षमता का अभाव है, बल्कि इसलिए कि वह उस स्थिति की भयानकता से बचना चाहता है। आज की अधिकांश कविताएँ पिक्टर के इस कथन

को चरितार्थ करती-सी जान पड़ती है। उनकी शैली बहुत कुछ दो व्यक्तियों के बीच होने वाले उस प्रेमालाप की तरह होती है। जिनमें फूल, पत्तों और मौसम की बात तो बार-बार की जाती है, पर वह मूल बात हर बार अकथित ही छोड़ दी जाती है, जो कि सारी वार्ता का केंद्र होती है। और ऐसा संप्रेषण के अभाव के कारण नहीं, बल्कि उसकी विवश कर देने वाली अपरिहार्यता के कारण होता है।

कुल मिलाकर सन् 60 के बाद लिखी जाने वाली कविताएँ सच्चे अर्थ में समकालीन उपकरणों के द्वारा समकालीन कवि की ओर से समकालीन पाठक के प्रति संबोधित कविताएँ हैं और अपने समय की कोई प्रौढ़ और संपूर्ण व्यवस्था चाहे न दे पाती हों, पर उसके प्रति एक सीधी और सच्ची मानवीय प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति जरूर करती है। यही उनकी उपलब्धि है और एक ऐसे समय में जब सच्ची बात कहना जोखिम का काम हो, इतना भी कम नहीं है। ऐसी कविता के सामने, जो समकालीनता के बोध से पूरी तरह घिरी हुई तो, बहुत से खतरे हो संकते हैं और उन पर अलग से विचार होना चाहिए। यहाँ केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इन कवियों की भावी सफलता इस बात पर निर्भर नहीं करती कि वे इन खतरों से किस हद तक बच पाते हैं, बल्कि इस बात पर निर्भर करती है कि वे अपनी संपूर्ण समकालीनता के साथ कहाँ और किस बिंदु पर इन सारे खतरों को अतिक्रांत कर जाते हैं।

❑❑❑

९. नयी कविता में नवीन सौन्दर्य बोध : बदलते प्रतिमान

नयी कविता में कुरुपता का विशेष चित्रण हो रहा है लेकिन वह भावना में संवेद्य रूप प्राप्त करके ही प्रस्तुत हो रहा है। दूसरे शब्दों में कुरूपता को सौन्दर्य शास्त्रीय मूल्य प्राप्त हो रहा है। अन्यथा वह पाठकों के लिए ग्राह्य नहीं हो सकती है। नवीन सौन्दर्य बोध यथार्थता की गहराई में जाकर उसकी कुरूपता को संवेद्य बनाने का प्रयत्न कर रहा है।

प्राचीन कवियों ने श्रृंगार, करूण और वीर रसों को प्रधान मानकर साहित्य में सौन्दर्य को प्रमुखता दी। रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि रस अंग रूप में ही दिखाई देते हैं। कुरूपता हास्य का आलंबन बनकर बालकों में कुछ महत्त्वपूर्ण स्थान पा सकी थी परंतु आधुनिक काल में रोमांटिक छायावादी युग के बाद असौंदर्य या कुरुपता को महत्त्व मिला है। काव्य वस्तु ही नहीं उसे व्यक्त करने वाले अलंकार, प्रतीक, बिंब आदि भी कुरुपता संबंधी संकेतों के द्वारा प्रभविष्णुता पा सके हैं। आधुनिक कवि हास्य की सृष्टि के लिए नहीं रौद्र, भयानक और वीभत्स रसों की व्यंजना के लिए भी कुरूपता को साधन के रूप में ग्रहण कर रहे हैं।

साहित्य में इस परिवर्तन के कारण स्पष्ट ही हैं। साहित्य आदर्शों को छोड़कर वास्तविकता के पास आ गया है। वास्तविकता में अच्छाई से बुराई और सौंदर्य से कुरूपता अधिक मिलती है। आर्थिक दृष्टि, औद्योगीकरण से उत्पन्न परिस्थितियों, महानगरों के विकास और युद्धों ने आधुनिक जीवन को कुरूप कर दिया है। कृत्रिम सभ्यता के विकास के साथ आत्म-वंचना और आत्म-गोपन की प्रवृतियाँ बढ़ गई हैं। इन परिस्थितियों में कवि या तो सेक्स की उत्तेजना के प्रवाह में बह रह हैं या निराशा के गर्त्त में गिर रहे हैं। कवियों की भावनाएँ कुरूपता के चारों और मंडरा रही हैं। जब कवि, कुरूपता की आराधना करके परिस्थितियों के अनुसार उसमें जीवन के किसी सत्य या मूल्य को दिखाया है तब नवीनतम कविता उपेक्षणीय या तिरस्करणीय नहीं रह जाती।

यह संभव है कि प्राचीन संस्कारों की प्रबलता के कारण अभिजात्य वर्ग का व्यक्ति नई कविता का आस्वादन न कर पायें। लेकिन कालक्रम में संस्कारों के

परिवर्तन से मनुष्य की सौंदर्य-भावना भी बदल रही है। सौंदर्य बोध में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। कुरूपता कैसे सौंदर्य बनती है? अज्ञेय से एक उदाहरण देखें–

"मिट्टी के नीचे
जहाँ एक बुदबुदाता अंधकार था
कीड़े आँख-ओर कुलबुलाते थे
रिसता था जिसकी नस-नस में
मैल किस-किस का और कब-कब का
मिट्टी के नीचे
बुदबुदाते अंधकार में
पौधे की जड़ क्रियमान थी।"[1]

मिट्टी के नीचे इस कीचड़ से जिस तरह पौधे का विकास होता है, उसी तरह साहित्य सर्जना में भी कवि-जीवन के मैलेपन से रस-ग्रहण करता है, उससे असँपृक्त नहीं रह सकता।

परंतु जो कुरुपता साहित्य में आस्वाद्य रूप न पाकर दैनिक जीवन की तरह जुगुप्सा उत्पन्न करती है वह साहित्य के अंतर्गत नहीं मानी जा सकती। रूप-विकार या भाव-विकार साहित्य में यथावत् ग्राह्य नहीं हो सकते। नई कविता में ऐसे भी संदर्भ हैं जहाँ कुरूपता वास्तविक जुगुप्सा में परिणत दिखाई देती है। वस्तुतः कूरूपता को सौंदर्य में परिणत करने के लिए उसकी व्यंजना में संयम की बड़ी आवश्यकता है।

इस प्रकार फूहड बोध अथवा कुरूप-बोध का यह स्वर आज की कविता का ऐसा स्वर है जो नए सौंदर्य बोध का बाहक है। जिस प्रकार आज की कविता केवल भावना को उद्धेलित न कर विचार तथा मस्तिष्क पर प्रहार करती है, उसी प्रकार आज के संदर्भ में सौंदर्य-बोध केवल उल्लास तथा तृप्ति का वाहक न होकर, वह कुरूपता तथा फुहड-बोध का क्षेत्र होता जा रहा है। यही कारण है कि नई कविता और अकविता का सौंदर्य-बोध पुराने मानदण्डों से ठीक प्रकार से समझाया नहीं जा सकता है और 'सौंदर्य' शब्द इतना रूढ़ हो गया है कि उसे नए अर्थ-संदर्भ में प्रयुक्त करना उसके प्रति अन्याय समझा जाता है।

सौंदर्य-दृष्टि की यह नयी परिदृष्टि आज की रचना-प्रक्रिया का एक विशिष्ट अंग होती जा रही है जिसके फलस्वरूप समसामयिक कविता में गद्यात्मकता, बिखराव, फूहड़पन तथा भाषा के स्तर कविता को 'अकविता' या 'अनकविता' की ओर उन्मुख कर रहे हैं। यही कारण है कि अकविता का अकाव्य-शास्त्रीय काव्यशास्त्र विकसित होता जा रहा है। इस नूतन काव्य-शास्त्र का सौंदर्य-बोध, कुरूपता, गंदगी, फूहड़पन विद्रोह तथा झूंझलाहट की भंगिमाओं से युक्त है। आज के

युवा लेखन में एक ऐसा तीखा तेवर है जो उनकी भाषा और शिल्प में ऐसा घुलमिल गया है कि हम उस शिल्प को पुराने काव्य शास्त्रीय सौंदर्य बोध से समझने में असमर्थ रहेंगे। मलयराय चौधरी ने विक्टोरिन नैतिकता तथा आदर्शवादिता का विरोध करके 'गंदगी' के दर्शन को प्रस्तुत किया है। चौधरी के मतानुसार हम गंदगी से उगते हैं और पृथ्वी में गंदगी के रूप में समा जाते हैं। पसीना हमारी त्वचा की गंदगी है। कविता हमारी अनुभूति की गंदगी है। प्रेम हमारे हृदय की गंदगी है। यह गंदगी की कविता आज की रचना प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। गंदगी यदि सर्जना-प्रक्रिया का अंग होकर आती है और उसका प्रयोग केवल मात्र चौंकाने और आरोपित मुद्रा बनाने तक ही सीमित नहीं है तो 'गंदगी' जीवनानुभव की प्रामाणिकता का अंग ही मानी जाएगी।

अत: आधुनिक बोध के संदर्भ में एब्सर्ड-बोध अस्वीकार, गंदगी, 'फूहड़पन को नकारा नहीं' जा सकता है क्योंकि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का यह एक नतीजा है जो सर्जना के धरातल पर रचनाकार भोगता है और उसी में जीता है। यह जीना और भोगना तो सत्य है, पर यहाँ पर यह भी दृष्टव्य है कि रचनाकार केवल भोगने वाला जीव नहीं है, पर वह भोगने की प्रक्रिया में एक अन्वेषक भी है, गंदगी के बीच में सुगंध और स्वच्छता को पहचानने वाला भी है और विसंगतियों के बीच में अर्थवान संगति को ढूँढने वाला भी है। सत्य तो यह है कि सर्जक की पीड़ा ज्ञान का सहारा लेकर अपनी र्सजना को अधिक व्यापक बनाती है और साथ ही ज्ञान' की अनेकमुखी भंगिमाएँ कवि और रचनाकार के लिए, नये क्षितिजों को खोलती है। सामाजिक स्तर पर अस्वीकार का स्तर किसी नए समाज का खोजी होता है।

मार्क्स की मान्यता है कि जब किसी समाज के गर्भ से नया समाज कुल बुलाने लगता है तो 'शक्ति' उस नए जन्म में दाई का खेल अदा करती है। सामाजिक उथल पुथल से 'शक्ति' स्वमेव की उद्‌भूत होती है। यह शक्ति बन्दूक की नली से न निकल कर जन-चेतना की वाणी से निकली है। यही जन-चेतना की शक्ति जनतांत्रिक-चेतना का स्वरूप है और आधुनिक बोध के साथ यही शक्ति जुड़ी हुई है। आज की सामाजिक व्यवस्था, विचार-प्रक्रिया तथा नगर-बोध की सम्मलित क्रिया के द्वारा आधुनिक बोध का स्वरूप मुखर होता है।

समकालीन रचनाकारों में सामाजिक ढाँचे के प्रति एक आक्रोश एवं विद्रोह का जो अस्वीकारात्मक स्वर प्राप्त होता है, वह अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी सकारात्मक स्वर की तलाश है, वह नितांत बेमानी और फैशन का रूप नहीं है जैसाकि अनेक समकालीन आलोचकों का मत है। समाज, राजनीति, अर्थनीति, धर्म, सेक्स और नारी सभी क्षेत्रों में रचनाकार पुराने प्रतिमानों को तोड़कर नए प्रतिमानों की खोज करता है। परंतु यह खोज अभी इतनी मुखर नहीं हो सकी है जिसका कारण

कदाचित् यह है कि हमारा समाज अभी संक्रातिकाल से गुजर रहा है। इस में 'भोग' की इतनी अधिकता है कि वह अभी अपने को उससे ऊपर नहीं उठा सका है। हमारे भोग और आंतरिक खोखलेपन ने हमें संकीर्ण बना दिया है और ज्ञान के प्रति हमारा दृष्टिकोण केवल मात्र भोगपरक ही रह गया है।

युवा कवियों की कुछ कविताएँ ऐसी हैं जिनमें जीवन के आसपास के सौंदर्य को रंग बोध के जरिए देखा गया है। इस प्रकार अपनी पूर्ववर्ती कविता से नयी कविता अपने सौंदर्या ग्रहों की दृष्टि से भी भिन्न और अपने विशिष्ट व्यक्तित्व से युक्त है। सौंदर्य की उसकी दृष्टि गारिमावलयों से आवेष्टिति मर्यादित देवमालाओं के गिर्द सीमित नहीं है, अपितु वह किसी हद तक पैंगन है, जहाँ का सौंदर्य का साक्षात्कार उसकी स्फीति, मौलिकता और शुद्धता के माध्यम से उन्मुक्त साहचर्य और भोग की मुद्राओं में किया जाता है।

नयी कविता के लिए सौंदर्य खण्ड-सत्य नहीं, बल्कि एक संपूर्ण सत्य है। सौंदर्य के प्रति नये कवि की दृष्टि में तटस्थता नहीं, भोग-कामना की आतुरता है। वह सौंदर्य का भोक्ता है और उसे आत्मसात करके भोगना चाहता है। सौंदर्य उसके लिए स्थिर दृष्टिकोण नहीं, अपितु एक विकसित दृष्टिकोण है। सौंदर्य के प्रति चेतन-विवेक और आशयपरक आत्मसातीकरण की यह विशिष्टता नयी कविता को उसकी पूर्वा के संदर्भ में विशिष्ट गुणात्मकता देती है। उसने जीवन की वास्तविकता को रहस्यों और दुर्बोधता से पृथक कर बोधगम्य बनाया है, इसलिए सौंदर्यानुभूति के लिए उसका माध्यम यथार्थ है। इसीलिए वह असुंदर की उपेक्षा नहीं करती, क्योंकि उसके लिए असुंदर भी सुंदर के बोध का माध्यम है। सौंदर्य को उसने एक चमत्कार नहीं माना, सत्य का साक्षात्कार माना है; सत्य जो जीवन की मन्तव्यपूर्ण क्रियाशीलता से उद्‌भूत और तदनुसार अनुभूति की एक उपलब्धि है। ऐसी उपलब्धि जिसमें मानव मुक्ति निहित है, और इसलिए नयी कविता ने सौंदर्य की निजी अनुभूति को प्रसारमार्गी समाजीकरण दिया है, जो वास्तविक सत्य और यथार्थ के अधिकाधिक समीप पहुँचेगा, जो इसका जिनता मार्मिक आंकलन और उद्‌घाटन करेगा, वही साहित्यकार समाज की और जनता की अधिकाधिक सेवा करेगा, और उसके लिए अनन्य सौंदर्य की सृष्टि कर सकेगा।[2]

दूसरा सप्तक में अपनी कविताओं के साथ दिए गये वक्तव्य में शमशेर ने कहा था, 'सुंदरता का अवतार हमारे सामने पल-छिन होता रहता है। अब यह हम पर है कि हम अपने सामने और चारों ओर सी इस अनन्त और अपार लीला को कितना अपने अंदर घुला पाते हैं।[3]

शमशेर सातवें दशक के नये कवितयों में से है। जिन्होंने सौंदर्य को अपनी आत्मा का विषय बनाया है। जीवन प्रसंगों की व्यापकता और उलझाव में से कुछ

प्रवल संवेदनापरक प्रसंगों का संकलन, और उन प्रसंगों के मर्म में शब्दों के अमूर्त संधान के एक विराट और रंगमयी चेतना लोक की प्रतीति, उसका उद्‌घाटन शमशेर की कविता-प्रक्रिया के दो छोर हैं, जिनके बीच उनकी इंद्रधनुषी कविताओं का ताना-बाना बुना गया है। यह शैली चित्रकला की 'इम्प्रेशनिज्म' जैसी शैली है। वस्तुपरक सत्य का आत्मपरक वोध, और उस वोध से प्राप्त अद्वितीय स्पदन्दनों का सकलन और पुनः प्रस्तुतीकरण इस विश्वास के साथ कि कृति का भोक्ता भी उनके ग्रहण से मूल अनुभूति की पुर्नरचना कर सकेगा। किंतु इस शैली से काव्य में दुरूहता आने का संकट बना रहता है। शमशेर का एक चित्र प्रस्तुत है–

"एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता पूर्व से पश्चिम को एक कदम नापता बढ़ रहा है।

कितनी ऊँची धारों चाँद को छूने को हैं
जिनमें घुटनों को निकालता वह बढ़ रहा है
अपनी शाम को सुबह से मिलाता हुआ
फिर क्यों
दो बादलों के तार
उसे महज उलझा रहे हैं।"[4]

शमशेर उन कवियों में से हैं जो मार्क्सवाद को 'समाज-सत्य का मर्म, मानते हैं, इसीलिए उनके सौंदर्य-संवेदन और कला-मूल्यों में उद्वन्द्वात्मका समरूपता के दर्शन होते हैं–

'आइनों, रोशनाई में घुल जाओ और आसमान में
मुझे लिखो, और मुझे पढ़ो
आइनो, मुस्कुराओं और मुझे मार डालो
आइनों मैं तुम्हारी जिंदगी हूँ।'[5]

इसी के साथ गिरिजा कुमार माथुर भी नयी कविता में सौंदर्य की प्रखर प्रतिष्ठा करने वाले दूसरे कवि है और वह मानते हैं कि सुंदर कृति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह शिव भी हो और यह भी कि कृतिकार में उच्चकोटि का नैतिक बोध और उच्च कोटि का सौंदर्य बोध साथ-साथ चलते हैं।

सातवें दशक की नयी कविता के सौंदर्य बोध में बदलते हुए प्रतिमानों की चर्चा करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनके लिए सौंदर्य वस्तु का एक गौण और महत्त्वपूर्ण अंग है। अनेक समर्थ कविताओं में नारी, प्रकृति आदि की सुंदरता बिल्कुल अनुपस्थित है। वस्तु और भाव के सौंदर्य के स्थान पर विचारों का सौंदर्य अधिक है। सौंदर्य

के जो चित्र मिलते हैं उनके साथ सामाजिक प्रतिबद्धता का भाव अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। बिंबवादियों की तरह केवल सौंदर्य के लिए कुछ पंक्तियाँ गढ़ देना युवा कवियों की रुचि के प्रतिकूल पड़ता है। सूक्ष्म वायवीय और अतीन्द्रिय सौंदर्य चित्रण से प्राय: रहित युवा कविता का सौंदर्य/बोध पूर्ववर्ती नई कविता के/सौंदर्य निरूपण की तुलना में अधिक व्यापक, स्वस्थ और प्रासंगिक है। लोक-जीवन के चित्रों से न केवल सातवें दशक की नयी कविता की जन-जीवन से निकटता प्रमाणित होती है अपितु उनकी ताजे और कुष्ठा विहीन सौंदर्य के प्रति रूझान की पुष्टि भी होती है।

सन्दर्भ सूची

1. स: विद्यानिवास मिश्र अज्ञेय; हमने पौदे से कहा–पृ. 46
2. मुक्ति बोध : नयी कविता का आत्म संघर्ष: पृ. 75
3. स अज्ञेय: दूसरा सप्तक (वक्तव्य-शमशेर) पृ. 68
4. शमशेर : कुछ और कविताए पृ. 7
5. वही : कुछ और कविताए पृ. 32

❑❑❑

10. नयी कविता की भाषा

नयी कविता में समाज की सजीव एवं समर्थ इकाई के रूप में व्यक्ति की प्रधानता है। व्यक्ति ही अपनी भूमिका इस प्रकार निभाता है कि वह लोक कल्याणकारी समाज की स्थापना कर सके। उसमें क्षणवाद और लघुमानववाद के दर्शन होते हैं जो मनोविज्ञान पर आधारित है। नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर डॉ० राम दरश मिश्र के अनुसार–लघुमानव का अर्थ है वह समान्य मनुष्य जो अपनी सारी संवेदना, भूख, प्यास के लिए उपेक्षित था। उसका अर्थ क्षुद्र मानव नहीं लेना चाहिए। यही कारण है कि कवि मानव जीवन के अंदर तथा बाहर दोनों पक्षों को स्पष्ट करता है जिसमें उसकी झुंझलाहट, व्यंग्य, उलझन, कुंठा, खीझ सभी कुछ व्यक्त होती है।

यह भी उल्लेखनीय है कि इसमें क्षणवाद के साथ बौद्धिकता, भौतिकवाद की असंपृक्ति भी मिलती है जो अनुभव पर आधारित होती है। अनुभूति से शून्य कविता निरर्थक है अतएव नयी कविता पर आधारित होती है। अतएव नयी कविता में कोई भी अनुभूत गहरा क्षण अथवा प्रसंग लिया जा सकता है। साधारण से साधारण विषय भी नई कविता का विषय बन सकता है।

इस आंदोलन के प्रमुख कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने आज के संघर्षमय, कटु तथा अर्थहीन जीवन को भोगने वाले मानव का चित्रण किया है। व्यक्ति अपने परिवेश में जीता है। जिसमें आशा के साथ निराशा, उत्साह–उल्लास के साथ कुंठा व्याप्त है अतएव उसको चित्रित करने वाली कविता में अनायास ही ये तत्व आ जाते हैं। गिरिजा कुमार माथुर इस आंदोलन के समर्थ कवि हैं। उनके काव्य में प्रेम और सौंदर्य का पक्ष प्रबल है। नयी कविता के संपादक तथा इस आंदोलन को मुखर स्वर देने वाले डॉ० जगदीश गुप्त के अनुसार लोक मंगल की सर्वाधिक प्रतिष्ठा नई कविता द्वारा ही की गई है। इसका ही स्पष्ट स्वर इन पंक्तियों में मुखरित हुआ है–

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता पर
इसको भी पंक्ति दे दो।

नयी कविता क्या है? इस संबंध में प्रयोगवाद के प्रवर्तक समर्थ आलोचक तथा

चिंतक 'अज्ञेय' कहते हैं कि 'पहली स्थापना मैं यह करना चाहूँगा कि नई कविता सबसे पहले एक नई मनः स्थिति का प्रतिबिम्ब है–एक नए मूड का–एक नए राग संबंध का। किसी का किससे राग संबंध? मानव और मानव जाति का नया संबंध–और मानव जाति और सृष्टि मात्र के संबंध के परिप्रेक्ष्य में।

नयी कविता की बाक शिल्प प्रमुख विशेषता है। यह नयापन भावपरक भी रहा। साधारण बोलचाल की भाषा, लोक प्रचलित मुहावरे। पदबंधों का चुटीला प्रयोग आदि कुछ तत्व नई कविता की विशेषता है। यह तो सर्वमान्य है कि भावानुसार भाषा ढलती है। कठिन भावों की अभिव्यक्ति में भाषा भी कठिन हो जाती है। जो कवि जितनी गहराई तक चिंतन मनन करता है उसकी भाषा भी भावों के समय गंभीर हो जाती है फलतः भाषा भावों की अनुगाभिनी है। इस संबंध में प्रतिभा संपन्न कवि स्वः राजकमल चौधरी के विचार प्रमुख है। हम नई कविता-भाषा की सृष्टि करना चाहते हैं जो जन-साधारण की भाषा से सर्वथा स्वाधीन और विचिछन्न हो। वह अंतन्य तीव्र तीक्ष्ण आत्मचेतन की भाषा का परंपरागत विस्तार मात्र न हो। जन साधारण की भाषा को, अर्थों में विच्छिन्न एवं स्वाधीन अर्थों में व्यवहत करें ऐसा हम चाहते हैं। आज के व्यक्ति के जटिल मनोभावों के लिए प्रतीक और चित्र दोनों पुराने होने के कारण अर्थहीन हैं।

यही कारण है कि नये कवि अपनी आवश्यकताओं के अनुसार भाषा को प्रयोग के माध्यम से विकसित करते हैं। शब्द के अभिधार्थ को अभिव्यक्ति के अनुकूल मोड़कर उपयुक्त विशेषणों से चित्र/बिंब संयोजित कर, वाक्य गठन के अंदर अर्थध्वनियों को विकसित कर तथा भाषा के सामान्य प्रयोगों को विशिष्ट अर्थों में संदर्भित कर नया कवि भाषा को संप्रेषण के अनुकूल बनाता है।

नई कविता के भाषिक पक्ष को बड़े विस्तार से तीसरे सप्तक' की भूमिका में लिखा है।

पहला आयाम

पहला आयाम भाषा से संबंध रखता है। प्रत्येक शब्द की अपने वाच्यार्थ के अलावा अलग-अलग व लक्षणाएँ और व्यंजनाएँ होती है–अलग संस्कार और ध्वनियाँ। शब्द अपने आप में संपुर्ण या अत्यधिक नहीं है; किसी शब्द का कोई स्वयन्भूत अर्थ नहीं है। अर्थ उसे दिया गया है, वह संकेत है। जिसमें अर्थ की प्रतिपत्ति की गई है। एक मात्र उपयुक्त शब्द की खोज करते समय हमें शब्दों की यह तर्दयता नहीं भूलनी होगी, वह एक मात्र' इसी अर्थ में है कि हमने नियम बना दिया है कि शब्द रूपी अमूक एक संकेत का एक मात्र अभिप्रेत क्या होगा।

यहाँ यह मान लें कि शब्द के प्रति यह नई और कह लीजिए मानववादी दृष्टि है–प्रत्येक शब्द का प्रत्येक समर्थ उपभोक्ता उसे नया संस्कार देता है। इसी के द्वारा पुराना शब्द नया होता है–यही उनका कल्प है। इस प्रकार शब्द वैयक्तिक प्रयोग होता है और प्रेषण का माध्यम भी बना रहता है, दुरूह भी होता है और वोध्यगम्य भी, पुराना परिचित भी रहता है और स्फूर्तिप्रद्र अप्रत्याशित भी। नये-कवि की उपलब्धि और देन की कसौटी इसी आधार पर होनी चाहिए। जिन्होंने शब्द को नया कुछ नहीं दिया है, वे लीक पीटने वाले से अधिक कुछ भी नहीं है।

जैसा कहा जा चुका है नई कविता में लोक-मंगल की भावना रहती है। ऐसी स्थिति में उसकी भाषा लोक जीवन के जितना अधिक निकट होगी उतनी समर्थ होगी। लोक भाषा में जितनी अभिव्यक्ति की क्षमता है उतनी मानव भाषा में नहीं होती। मानक भाषा लोक भाषा से ही शक्ति ग्रहण करती है। यही कारण है कि नई कविता में लोकजीवन की अभिव्यक्तियाँ तथा लोक भाषा में प्रचलित शब्द/बिंब मिलते हैं–

जनपदीय जन जीवन के अधिक समीप होने के कारण बुंदाबांदी, खपरैलु मतीला, चुहल मेउ तसला आदि शब्दों के प्रयोग मिलते हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है, कि नई कविता में भाषा और विशेष रूप से शब्द का विशेष महत्त्व है। प्रत्येक उच्चारित शब्द वायु में विशेष कंपन पैदा करता है और यही कंपन 'हमें' स्पर्श करता है और अभिधा लक्षणा, व्यंजना शक्तियों से हम उसे बोधगम्य करते हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आज के युग के देन–विसंगति का फैलाव मृत्युबोध, रिक्तता, अकेलापन, कुंठा, यांत्रिक जीवन, अलगाव, एकांकीपन, संवेदना आदि सभी तो नई कविता में मुखर हैं अत एव इनके अनुकूल भाषा को भी तैयार किया जा रहा है। प्रसन्नता ये है कि बिम्बविधान के सफल प्रयोगकर्ता शमशेर बहादुर सिंह, अजित कुमार, गिरिजा कुमार माथुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, श्रीकान्त वर्मा, रघुवीर सहाय, जगदीश गुप्त तथा जगदीश चतुर्वेदी के माध्यम से काव्य भाषा को जो नया-स्वरूप मिला है वह उत्तरोतर विकसित होता रहेगा।

❑❑❑

11. समकालीन कविता में अंतर्राष्ट्रीय स्वर

समकालीन कवि ने विरोध की राजनीति को अपनानते हुए व्यवसाय की एक-एक दुर्बलता का सूक्ष्मता से अवलोकन करने के पश्चात् उन पर तीक्ष्ण प्रहार किए। विद्रोह की यह राजनीति केवल राष्ट्रीय व्यवस्थाओं की दुर्बलता का ही उल्लेख नहीं करती, अपितु उसका दृष्टिकोण अधिक व्यापक होने के कारण अंतर्राष्ट्रीय भी है जिसके कारण विश्व में प्रतिष्ठित वर्तमान राजनीतिक हथकण्डों को नग्न कर देने का प्रयास भी इस कविता में मिल जाता है। अखिल विश्व में व्याप्त अवसरवादी राजनीति के कारण कवि को सारा संसार युद्ध की संकटकालीन स्थिति का सामना करता हुआ प्रतीत होता है। बढ़ती हुई तानाशाही की प्रवृत्ति के कारण वियतनाम, तिब्बत, क्यूबा, पूर्वी बंगाल आदि में भयानक नरसंहार हुआ। इसके कारण कवि को जहाँ तैमूरलंग, नेनोलियन और हिटलर जैसे तानाशाह पुनः जन्म लेते प्रतीत होते हैं, वहीं वह उस नर संहार को मानवता की जीवित-मृत्यु के रूप में चित्रित करता है।[1] वियतनाम में अमरीका द्वारा किए गये नरसहार के विरुद्ध कवि की प्रतिक्रिया बहुत तीखी है–

> द्रौपदी नहीं है वियतनाम / लेकिन उसे नंगा करने पर / तुला है अमेरीका।"[2]

समाजवाद की रक्षा के नाम पर, रूस ने, चैकोस्लाविया की जनता पर जो जघन्य अत्याचार किया, उसके प्रति भी कवि ने आक्रोश व्यक्त किया। ऐसा लगा, जैसे हरे-भरे वातावरण में सहमे सिमटे खरगोश की खूनी पंजों में दबोच लिया गया हो। समाजवाद के नाम पर साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का नग्न रूप कवि से छिपा नहीं रहा। वर्तमान समय में विश्व स्पष्टतः दो भागों में बँटा हुआ है। एक ओर नेता बनकर अमेरिका खड़ा है, तो दूसरी ओर रूस नेतृत्व का दावा करता है। कवि के मन में दोनों देशों के प्रति सम्मान की भावना है, क्योंकि दोनों का सैद्धांतिक दृष्टिकोण मानवीय हैं। व्यवहार में भले ही अमानवीय हैं। इन दोनों ही देशों के उच्च सिद्धांतों के प्रति श्रद्धा अर्पित करते हुए कवि. ने कहा है–

"मुझे अमरीका का लिबर्टी स्टेच्यू उतना ही प्यारा है / जितना, मास्को का लाल तारा / और मेरे दिल में पेकिंग का स्वर्गीय महल / मक्का मदीना से कम पवित्र नहीं / मैं काशी में उन आर्यों का शंखनाद सुनता हूँ / जो वोल्गा से आए।"[3]

इस अंतर्राष्ट्रीय चरित्र को लेकर भी कवि इस बात के लिए चिन्तित है कि विश्व दो विरोधी गुटों में बँटता जा रहा है और दोनों शांति से रहने की बजाए एक-दूसरे पर कब्जा करने के लिए प्रयत्नशील हैं। कवि भावी पीढ़ी के लिए लिखता है–

"तुम्हें स्कूलों में पढ़ाया जाएगा / कि सौ वर्ष पहले / इंसानी ताकतों के दो बड़े राज्य थे / और इसीलिए दोनों दिन-रात युद्ध की तैयारियों में लगे रहते थे / जो दोनों संसार को सुखी देखना चाहते थे और इसीलिए सारे संसार पर कब्जा करने की सोचते थे।"[4]

अमेरिका और सोवियत रूस, दोनों के पास ही बड़े-बड़े संहारक अस्त्र हैं। अणुबम उद्जन बम, प्रक्षेपास्त्र आदि अनेक प्रकार के आयुधों से लेस ये दोनों देश जिस क्षण चाहे, दूसरे देश को नष्ट कर दें। लेकिन स्वयं के नष्ट होने का भी पूरा खतरा है। इसलिये दोनों ही प्रत्यक्ष युद्ध से कतराते हैं। परोक्ष रूप से एक दूसरे के प्रभाव क्षेत्र को सीमित करने या नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए शतरंज की चालें चलते रहते हैं जिसमें मोहरें बनने हैं, विश्व के छोटे-छोटे और अविकसित या विकासशील देश। एक दूसरे से भिड़ने के खतरे को जिस प्रकार ये महाशक्तियाँ बचाती रहती हैं, कवि उसका चित्रण करते हुए कहता है–

"सबके पास डंक है / सबको / यह ज्ञात है / डसने के बाद / मधुमक्खी मर जाती है।"[5]

अणु आयुध, संपूर्ण मानव जाति के लिए विनाशकारी अस्त्र हैं। अणु बम का प्रथम प्रयोग द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिका ने जापान के दो नगरों–हिरोशिमा और नागासाकी–पर किया था, और उस विनाश लीला को देखकर विश्व स्तम्भित रह गया था। मानवता, कराह उठी थी। आज तो उससे भी भयानक और संहारक अणु-आयुध बन चुके हैं। दूसरी ओर विश्व के दोनों गुटों का शीत युद्ध कभी-कभी इतना उग्र हो जाता है कि अणु युद्ध का खतरा बढ़ जाता है। विश्व-विनाश या प्रलय का संकट उपस्थित हो जाता है। इसीलिए कवि अणुबम का विरोध करता है।

प्रत्येक युद्ध शांति की रक्षा के लिए लड़ा जाता है। किंतु युद्ध से कितना विनाश होता है? कवि इस प्रश्न को महाशक्तियों के सम्मुख उठाता है–

'शांति-हित जो युद्ध का नारा लगाते
तुम्हीं उत्पादक, तुम्हीं संहारकर्ता
और है संहार भी होता तुम्हारा ही,
नहीं यह चेतना मन को तुम्हारे बेधती क्या?"[6]

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अमानवीय व्यवहार का एक और कारण 'रंगभेद' रहा है। विश्व की जातियाँ अनेक रंग की हैं–गोरी, काली, पीली। यूरोप या अमेरिका में गोरी जातियों का आधिपत्य है। यदि यूँ कहें कि बीसवीं शती के मध्य तक, समस्त विश्व पर ही गोरी जातियों का आधिपत्य रहा तो अत्युक्ति न होगी। ये काली जातियों को प्राय: हेय दृष्टि से देखते रहे हैं और उनके साथ पशुवत व्यवहार करते रहे हैं। किंतु बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में काली जातियों ने चेतना की नव अंगड़ाई ली और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष जारी है। दक्षिण अफ्रीका, रोडेशिया मौजाम्बिक, अमेरिका आदि देशों में आज भी काले नीग्रो अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत हैं। कवि को आशा है कि एक न एक दिन उनका संघर्ष अवश्य ही सफल होगा–

"कोटि कोटि काले कण्ठों की सुन सुन कर ललकार
वह देखो, गोरे दनुजों पर भय का चढ़ा बुखार।"[7]

मानवाधिकारों की रक्षा के लिए और संसार को युद्ध से बचाने के लिए द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्माण किया गया था। किंतु कालांतर में यह भी महाशक्तियों के स्वार्थ साधन का माध्यम बनकर रह गया। प्रत्येक विषय पर विरोधी गुटों में शक्ति परीक्षण होता है। विषय के महत्त्व पर निष्पक्ष विवेचन और क्रिया-निर्देश-निर्धारण न होकर यह गुटीय मानापमान का विषय बन जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समिति है–सुरक्षा परिषद, जो विश्व में युद्ध और शांति सम्बंधी निर्णय लेकर उन्हें क्रियान्वित करने का अधिकार रखती है। किंतु पाँच राष्ट्र तो इसके स्थायी सदस्य हैं जिन्हें निषेधाधिकार प्राप्त है। शेष अस्थायी सदस्य भी किसी न किसी महाशक्ति के पिछलग्गू होते हैं। इसलिए असमानता एवं असहयोग के वातावरण में यह परिषद् अभी तक, एक भी सही या निर्विवाद निर्णय नहीं कर पाई है। कवि इस पर व्यंग्य करते हुए कहता है–

"जैसे कि सुरक्षा परिषद को लें / वह एक मरगिल्ली गाय है / जिसे
नचिकेता लोग दुह रहे हैं।"[8]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नये कवि की दृष्टि स्वभावत: सार्वभौमिक है। देश, भाषा, धर्म, जातीयता के विभेद उसके लिए महत्त्वपूर्ण नहीं हैं और न उनके द्वारा वह अनुप्रेरित होता है। अपने देश, अपनी भाषा और अपने धर्म के प्रति सम्मान एवं स्नेह की भावना उसे मनुष्य मात्र की एकता की प्रतीति से विरत नहीं करती।

इसीलिए इन कवियों ने ज्वलंत अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को उठाकर, जहाँ वहीं उसका तीव्र विरोध किया है। विद्रोह की राजनीति राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय, दोनों ही स्तरों पर उसकी चेतना को प्रेरित करती रही हैं।

प्रस्तुत विवेचन के पश्चात् जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य उभर का आता है वह यह है कि समकालीन कविता का कवि राजनीति से प्रत्यक्ष सम्बद्ध है। दूसरे, समकालीन कवि के राजनीतिक दृष्टिकोण का आयाम, पूर्ववर्ती कवियों से अधिक व्यापक है। उसकी रचनाओं में राजनीतिक गतिविधियों से संबंधित विचार राष्ट्रव्यापी ही नहीं, अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं को भी छूते हैं। उसकी दृष्टि में समस्त विश्व की राजनीति भ्रष्ट और खोखली है। इसी कारण वह इस राजनीति की सीमाओं को स्पष्ट करते हुए उसका प्रबल विरोध करता है। देश में राजनीतिक भ्रष्टाचार और विघटन का जो वातावरण बना हुआ है, उसके कारण वह क्षुब्ध है। उसका राजनीतिक दृष्टिकोण किसी राजनीतिक दल का दृष्टिकोण नहीं है, ना ही वह किसी वाद अथवा विचारधारा का अनुकरण करता है। वह तो राजनीति के प्रति अपना एक स्वतंत्र तथा यथार्थवादी दृष्टिकोण रखता है, जिसके कारण प्राय: उसे विरोध पक्ष में खड़ा होना पड़ा है।

संदर्भ सूची

1. प्रभाकर माच्वे : अनुक्षण, पु. 40
2. "नैपोलियन / वह मेरे पास से गुजर रहा / है। नहीं है। अभी था यहीं / वह गया नंगी छाती पर नोक / तलवार की गड़ाता / लंगड़ाता है तैमूरलंग / वह आया अट्टहास / हिटलर का। / हर जगह है मेरी कब्र / फिर भी मैं मर नहीं पाया।

   —कैलाश वाजपेयी : तीसरा अंधेरा, पृ. 81
3. श्यामसुंदर घोष : प्रतिमान, पृ. 72
4. शमशेर बहादुर सिंह : कुछ और कविताएँ, पृ. 20
5. भारतभूषण अग्रवाल : ओ अप्रस्तुत मन, पृ. 108
6. कैलाश वाजपेयी : देहान्त से हटकर, पृ. 15
7. शंभूनाथ सिंह : मन्वन्तर, पृ. 15
8. नागार्जुन : प्यासी पथराई आँखें, पृ. 16

❑❑❑

12. "स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी कविता में पारिवारिक जीवन"

स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी कविता की सामाजिक चेतना का एक प्रमुख अंग है पारिवारिक जीवन का चित्रण। नये कवि ने आज के परिवार के बदलते हुए स्वरूप को भी अपने चिंतन का विषय बनाया है। इस वैज्ञानिक युग में परिवार का प्राचीन स्वरूप वैसा का वैसा नहीं रह गया। भारतीय समाज में प्रचलित संयुक्त-परिवार-प्रथा का विघटन होता जा रहा है। परिवार 'अणु' का स्वरूप धारण करता जा रहा है। इसके अनेक कारण हैं किंतु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण आर्थिक है। रोजी-रोटी कमाने के लिए एक ही परिवार के सदस्यों को दूर-दूर जाना पड़ता है जहाँ से रोजाना घर लौटना संभव नहीं होता। इसलिए वे अपनी पत्नी और बच्चों को अपने साथ ही ले जाना पसंद करते हैं। इसके अतिरिक्त एक ही परिवार के सभी सदस्यों की आय समान नहीं होती। कुछ न कुछ अंतर अवश्य रहता है। जिसकी आमदनी अधिक होती है, वह यह नहीं चाहता कि उसके दूसरे कम आमदनी वाले भाई और उसके पत्नी-बच्चों को भी वही सुविधा मिले जिन्हें उसके अपने पत्नी-बच्चे भोगते हैं। क्योंकि ऐसा करने पर उसकी अपनी आवश्यकताओं में कुछ न कुछ कटौती अवश्य हो जाती है। इसीलिए संयुक्त परिवार टूट-टूटकर अणु-परिवार में बदलते जा रहे हैं। किंतु ये अणु-परिवार भी बहुत खुशी नहीं है। इनमें भी आगे विघटन का खतरा उत्पन्न हो गया है।

आज के कवि ने परिवार को पूरे परिप्रेक्ष्य में देखा। आह्लाद के क्षणों के साथ-साथ विघटन के स्वर भी मुखरित हुए हैं। एकता के साथ-साथ विघटन का भी चित्रण हुआ है। वस्तुतः घर समाज की एक भरी-पूरी इकाई है, उसका सुख-दुख समस्त संसार का सुख-दुःख है। उसकी संवेदना, ममता, उदारता और समझदारी ही व्यापक होकर सांस्कृतिक दृष्टि बनती है।

(i) संबंधों की व्यापारिक व्याख्या

आजकल संबंध इस आधार पर स्थापित होते हैं, या कायम रहते हैं कि उनसे

कितना लाभ मिलता है। जो व्यक्ति, किसी के लिए लाभदायक नहीं है, वह किसी का संबंध नहीं हो सकता। संबंध प्रायः व्यापारिक होकर रह गए हैं–

केवल संबंध! व्यापारिक संबंध! / न तो घृणा है, न प्यार /
न दोस्ती, न बैर![1]

इसीलिए जब कोई व्यक्ति वृद्ध हो जाता है और उसका किसी के लिए कुछ भी व्यापारिक महत्त्व नहीं रह जाता तो उसके पास खांसी, खटिया, चश्मा और हुक्के के अतिरिक्त कोई नहीं होता[2] अर्थात् उसे अकेला छोड़ दिया जाता है।

(*ii*) पति-पत्नी का संबंध और बच्चों का सुख

वर्तमान जीवन में सर्वाधिक घनिष्ठ संबंध पति-पत्नी का ही रह गया है। पत्नी, पति के लिए कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसमें संदेह नहीं कि इसमें शरीर सुख का भी अपना अलग महत्त्व है, किंतु 'शरीर-सुख तो पैसे-टके में कहीं भी मिल सकता है, जबकि अनुराग के अतल तल का अमृत नीर कहीं नही' बिकता, कभी नहीं बिकता। यह अनुराग का अमृत ही पति-पत्नी के संबंध का मूल है। इसलिए यदि पति रुग्ण हापे और पत्नी मैके में तो उस समय पत्नी की बेहद याद आती है।[1] यदि पत्नी घर हो तो पति जीवन के सभी सुखों का अनुभव करता है। घर के काम-धंधे में लगी पत्नी और बिस्कुट खाता हुआ नन्हा बच्चा, सुबह-सुबह कवि को भी कार्यरत होने के लिए प्रेरित क़रता है।[2] कार्यालय में काम करते हुए भी सारे दिन पत्नी और बच्चों की मूर्तियाँ आँखों में तिरती रहती हैं।[3] यदि व्यक्ति कहीं बाहर होता है तो परिवार के अन्य लोगों की झलक उसे लगी ही रहती है। किंतु इसमें भी पत्नी का भाग कुछ अधिक ही होता है।[4] यद्यपि कभी-कभी इस सीमित वृत्त में घबराकर वह सोचने लगता है–

ये चंद बच्चे, बीबी/ये थोड़ी-सी तनख्वाह/मेरी परिधि है, जिसमें जीना है।[5] पर पत्नी के प्यार में उसका यह विषाद घुल जाता है। उसकी उपस्थिति मात्र से सारा संसार आकर्षक हो जाता है, महक जाता है। वह अनुभव की कच्ची मिट्टी को तदाकार कंचन कर लेता है।[6] पत्नी वस्तुतः व्यक्ति का रागपूरित संबंध है जिसके कारण विषमताओं के जंगल में लोकोत्तर सुख का स्पन्दन हीं नहीं जागता, बल्कि इन क्षणों की अनुभूति नश्वरता का बोध भी मिटा देती है। निस्संदेह बच्चों के होने पर व्यक्ति को अनेक प्रकार की कल्पनाएँ और स्वप्न भुलाने पड़ते हैं, क्योंकि कुछ जिम्मेदारियाँ भी बढ़ जाती हैं और बहुत से ऐसे कार्य करने पड़ते हैं, जिन्हें वह पहले कभी न करता।[7]

संबंधों में कडुवाहट का प्रारंभ–एक या दूसरे की अनपेक्षित अनुपस्थिति या

उपस्थिति से ही संबंधों में कड़ुवाहट आने लगती है।[8] अनैतिक भावना का जन्म भी तभी होता है और तभी पति या पत्नी के पैर दूसरी दिशा की ओर उठ जाते हैं। पति के विदेश-गमन करने पर पत्नी कितनी देर प्रतीक्षा कर सकती है? एक सीमा के पश्चात् वह जारज संतान उत्पन्न करती है जो नगरपालिका के कार्यालय में उसने अपने पति के नाम पर ही दर्ज करा दिए हैं। फर्ज तो पूरा करना ही है।[9]

इसके अतिरिक्त आर्थिक विषमता भी व्यक्ति-संबंधों में ढीलापन उत्पन्न कर देती है। धन के अभाव में जब व्यक्ति अपनी बीमार पत्नी की चिकित्सा भी नहीं कर पाता तो ग्लानि और वितृश्णा के कारण कच्ची शराब पीकर घर पहुँचता है, जिससे यह दरार और भी बढ़ जाती है। वह आर्थिक विषमता के 'चक्रव्यूह' को तोड़ने की गाथा कहना चाहता है किंतु 'अभिमन्यु' के जन्म का खर्च बर्दाशत नहीं कर सकता।[10] आर्थिक दबाव के कारण ही बच्चों का जन्म भी रोकना पड़ता है, क्योंकि जितने बच्चे बढ़ते हैं, उतना ही खर्च भी बढ़ता है और यदि वह पूरा न किया जाए तो घर में अशांति बढ़ती है।[11] स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि पति-पत्नी को एक-दूसरे की उपस्थिति भी असह्य हो जाती है।[12] इसलिए यदि पत्नी मैके चली जाती है तो पति प्रसन्न होता है।[13]

अक्सर ऐसा होता है कि बहुत अधिक साथ रहने से भी एक दूसरे से ऊब होने लगती है। बिना किसी कारण के ही, अति परिचय मात्र से आकर्षण कम हो जाता है। व्यक्ति नवीनता चाहता है। इसलिए भी प्राचीन संबंधों में दरार पड़ने लगती है–

हम कुछ इतना अधिक मिले / कि मिलते-मिलते ऊब गए।[14]

वैसे भी मानव-संबंधों में निरंतर विघटन होता रहता है। एक उदासीनता सी उम्र के साथ-साथ आती चली जाती है। इसके पीछे ओर कोई कारण नहीं होता। आज के कवि ने विवाह से लेकर उदासीनता तक की स्थितियों का वर्णन किया है।[15]

इस प्रकार वर्तमान हिंदी-कविता में पति-पत्नी और बच्चों के निरंतर विघटित होते हुए संबंध को यथार्थ दृष्टिकोण से उभारा गया है और समसामयिक परिप्रेक्ष्य में विघटन की संगति बैठाने का प्रयत्न किया गया है। विघटन के वैयक्तिक, आर्थिक, परिवेशगत एवं आयु संबंधी कारणों को प्रस्तुत कर इसे मनोवैज्ञानिक धरातल प्रदान करने का प्रयत्न भी हुआ है।

(*iii*) माँ बाप से संबंध : अस्तित्व का संघर्ष

आज की कविता में माता-पिता के प्रति आदर एवं विद्रोह के मिले-जुले भाव अभिव्यक्ति हुए हैं। कवि को इस बात का अहसास है कि पूर्व पीढ़ी अर्थात् उसके पिता ने कष्टपूर्ण जीवन जिया है, और उसे स्वयं भी कष्टों से ही जूझना पड़ रहा है, क्योंकि वह अपने पिता की अनुकृति मात्र ही तो है।[16]

माँ के प्रति भी असमी श्रद्धा का भाव दिखाया गया है। उसके वात्सल्यपूर्ण आंचल की याद क़वि को बार-बार आती है और कवि का मन अवसादपूर्ण हो जाता है।[17] किंतु इसके साथ ही वर्तमान युवक अपने अस्तित्व के प्रति भी सचेत है। वह अपने पिता या माँ के व्यक्तित्व में अपने व्यक्तित्व को विलीन नहीं करना चाहता। उनसे कुछ अलग 'काम' करने की इच्छा उसे बैचेन किए रखती है।

> छोटे से आंगन में माँ ने लगाए हैं तुलसी के बिरवे दो; / पिता ने उगाया है बरगद छतनार / मैं अपना नन्हा गुलाब कहाँ रोप दूँ।[18]

इसीलिए वह पोंगापंथी रूढ़ियों के प्रतीक पिता का विरोध करता है। उसका कहना है कि "जहाँ आप सड़ी-गली रूढ़ियों के प्रतिनिधि हैं, वहाँ आपको मेरी ठोकरें।"[19] यह ज्वलंत विद्रोह अकारण नहीं है। यह पीढ़ियों का संघर्ष है जो सायास या अनायास उभर आता है। आज के वैज्ञानिक युग में, जब अंधानुकरण की अपेक्षा तर्कबुद्धि का विकास अधिक हो गया है वह संघर्ष उग्रतम रूप में उभरकर आया है। इसीलिए आज की कविता में इसे प्रमुख स्थान मिला है।

(*iv*) बहन की राखी

पारिवारिक विघटन की इस आतंकमय प्रक्रिया में भी, बहन की राखी का महत्त्व अधिक कम नहीं हुआ है। कुछ कम अवश्य हुआ है, क्योंकि अर्थाभाव के कारण कभी-कभी यह एक बोझ-सा प्रतीत होता है। किंतु आज भी बहन की राखी, भाई के हृदय को आंदोलित कर देती है। प्रवास में, हथकड़ियों से बंधे हाथों में राखी के स्नेहसूत्र के पहुँचते ही, आँखों में आँसू आ जाते हैं।[5] यह बंधन की दृढ़ता है जिससे भाई-बहन का संबंध अभी तक वर्तमान है।

(*v*) नारी : काम-क्रीड़ा की पुतली, बच्चे जनने की मशीन

स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी-कविता में नारी के प्रति संतुलित दृष्टिकोण नहीं प्राप्त होता। प्राय: एकपक्षीय–प्रेमिका या पत्नी का–रूप ही चित्रित किया गया है, माँ का श्रद्धेय या बहन का स्नेहमय रूप नहीं। फिर भी, थोड़ी-बहुत मात्रा में, नारी के प्रति सहानुभूति विद्यमान है। नारी के काम-क्रीड़ा की पुलती होते हुए भी, पुरुष का उसके प्रति व्यवहार उचित नहीं है।[20] शिक्षित होकर भी, नारी अन्ततः गृहस्थी के बोझ में पिसकर रह जाती है। गीता पढ़कर सीता जैसी पतिनिष्ठ पत्नी का कर्तव्य ही उसके लिए उचित समझा जाता है।[21] इस पतिनिष्ठ नारी को, एक ओर तो पुरुष की काम-वासना शांत करनी पड़ती है और दूसरी ओर, गर्भ ठहर जाने पर संतानोत्पादक मशीन की संज्ञा भी स्वीकार करनी पड़ती है।[22] इसीलिए कवि, पुरुष को नारी के प्रति सचेत करता है कि नारी एक उमस भरे बड़े खेत की तरह है। इसे तैर कर पार जाना ठीक है। इसमें उगना ठीक नहीं है।[23]

नारी के प्रति यह उपेक्षा भाव निश्चय ही असह्य है, किंतु इसके लिए नारी भी कम दोषी नहीं है। वह या तो परंपराबद्ध, पतिनिष्ठ गृहिणी बनकर रह जाती है, अंधानुकरण का शिकार होती है, या फिर अत्याधुनिक बनने के चक्कर में, 'तितली' के समान फैशन-परेड में शामिल होती है। इस उपेक्षा-भाव का कारण अर्थाभाव एवं परिवार-नियोजन की भावना भी हो सकती है। चाहे कुछ भी कारण रहा हो, स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी कविता में नारी-सामान्य के प्रति उपेक्षा भाव या ईर्ष्या भाव ही उभर कर आया है। करुणा और सहानुभूति का भाव बहुत ही कम है। सहयोग की भावना भी विद्यमान नहीं है।

इस प्रकार पारिवारिक संबंधों की जो व्याख्या इस कविता में प्राप्त होती है, उसका आधार आधुनिक परिवेश में संबंधों का घटता हुआ मूल्य है, जिसके कारण उनके प्रति एक नैराश्य पूर्ण एवं विद्रोही दृष्टिकोण उभर कर आया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी-कविता का दृष्टिकोण समाज-सापेक्ष रहा है। इसकी आनुभूतिक संवेदनाएँ समाज की परंपराओं से पूर्णतः जुड़ी हुई हैं और इस जुड़ाव से ही विरोध के स्वर विस्फोटित हुए हैं।

संदर्भ सूची

1. देवेंद्र गुप्त : नयी कविता (अंक 8), पृ. 175
2. केदार नाथ अग्रवाल : युग की गंगा, पृ. 34
3. अज्ञेय : इंद्र धनु रौंदे हुए ये, पृ. 58
4. अजित कुमार : ये फूल नहीं हैं, पृ. 76
5. केशव चंद्र वर्मा : वीणापाणि के कंपाउन्ड में, पृ. 46
6. तुम होतीं तो, निज शीतल हथेलियों से माथा सुहलातीं, / तुम होतीं तो, मेरे उलझे वालों को बड़े प्यार से सुलझा देतीं।

   —गिरजा कुमार माथुर : नाश और निर्माण, पृ. 27
7. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : काठ की घंटियाँ, पृ. 328
8. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कल्पना (मई 60), पृ. 25
9. भवानी प्रसादी मिश्र : अंधेरी कविताएँ, पृ. 26
10. दुष्यंत कुमार : आवाजों के घेरे, पृ. 26
11. अज्ञेय : इंद्रधनु रौंदे हुए ये, पृ. 46
12. दिनकर सोनवलकर : ज्ञानोदय (जन. 66), पृ. 152
13. विनय : कई अंतराल, पृ. 30

14. लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता (अंक 5-6), पृ. 169
15. लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता (अंक 5-6), पृ 173
16. ठप्प कर दिया है अब / बच्चों का प्रजनन / जन्म के बाद का जीना हराम हो गया है।
    —केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 157
17. मुझे देखते ही तुम्हारे माथे पर तीन सलवटें गहरातीं / तुम्हारे आते ही मेरे मुँह की की नसें तनतीं।
    —किरण जैन : कल्पना (मई-जून 66) पृ. 40
18. देवीशंकर अवस्थी : माध्यम (अग० 66) पृ. 13
19. ओम प्रभाकर : पाँच जोड़ बाँसुरी, पृ. 132
20. गिरिजा कुमार माथुर : ज्ञानोदय (अप्रैल 66), पृ. 25
21. दुःखी मन में उतर आती है पिता की छवि / अभी तक जिन्हें कष्टों से नहीं निष्कृति/उन्हीं अपने पिता की मैं आकृति हूँ।
    —रघुवीर सहाय: सीढ़ियों पर धूप में, पृत्र 85
22. एक मेरी खाट का विस्तार नम्र-सा / क्योंकि मेरे शीश पर आँचल नहीं है।
    —सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : क़ाठ की घंटियाँ, पृ. 278
23. केदारनाथ सिंह : अभी बिलकुल अभी, पृ. 26

❑❑❑

13. काव्य के सौंदर्य-शास्त्रीय अध्ययन का महत्त्व

काव्य शास्त्र शब्दों से निर्मित काव्य का विवेचन करता है और रस, ध्वनि के नाम से काव्य के आत्मतत्व की गवेषणा करता है। जबकि सौंदर्य शास्त्र अपनी विषय-सीमा में सभी ललित कलाओं में अभिव्यक्त चारूत्व को स्वीकार करता है। 80 सौंदर्यशास्त्र सौंदर्य के संवेदनात्मक पक्ष को प्रमुखता देता है, इसलिए कीट्स ने संवेदनाओं के दार्शनिक विवेचन को ही 'स्थेटिक' का नाम दिया है। काव्यशास्त्र में विशिष्ट 'प्रवृति के रूप में संवेदनाओं के दार्शनिक विवचन की चर्चा नहीं हुई है। नया-काव्य जो कि हमारा विवेच्य विषय है में कामवासना की स्थूल यथार्थपरक अभिव्यक्ति, कुरुपता, भेदस, संत्रास, परायापन तथा नये यथार्थवादी रूझान के कारण सामाजिक विद्रोह और व्यंग्य तथा आक्रामक रोष की सपाटव्यानी हुई है। परम्परा से चला आ रहा नैतिकता बोध एवं अभिव्यक्ति कोशल छिन्न-भिन्न होकर चरमरा गया है। आज की जीवन-प्रणाली में वही कला और काव्य सही उतरेगे जो इनकी सही जाँच द्वारा भदेस में उत्पन्न फूहड़ सौंदर्य-बोध की नब्ज टटोल पाएँ। काव्यशास्त्र जोकि शब्द निर्मित काव्य का ही विवेचन करता है और मात्र कृति की राह से गुजर कर मूल्य-धार्मिता की उपेक्षा कर जाता है। नये-काव्य का सही विश्लेषण करने में असमर्थ है। इसलिए प्रस्तुत काव्य का मनोविज्ञान एवं समाज शास्त्र की आधुनिक दृष्टि से सौंदर्य शास्त्रीय विवेचन करना जरूरी है। ऐसा करने से नये काव्य का वर्तमान जीवन-प्रणाली एवं समग्र ललित कलाओं के व्यापक संदर्भ में विश्लेषण करना सरल हो जाएगा।

कविता अपने भावों एवं विचारों की व्यापकता एवं विशिष्टिता के कारण अन्य ललित कलाओं के समस्त गुणों को अपने में समेटे हुए हैं। अन्य कलाओं की भाँति सृजनात्मक अंर्तमन की एक रचनात्मक क्रिया होने तथा काव्येतर कलाओं के साथ घनिष्ठ संबंध के कारण कविता का सौंदर्य शास्त्रीय विवेचन जरूरी है। काव्य-शास्त्र केवल शब्दों के माध्यम से निर्मित कविता का विवेचन करता है, इसलिए यह विवेचन अधूरा है। मात्र कृति को राह से गुजर कर यह तो जाना जा सकता है कि वह कैसी है किंतु वह ऐसी क्यों है? इसका उत्तर सौंदर्य शास्त्रीय अध्ययन ही दे

सकता है। क्योंकि काव्य कोई नक्काशी नहीं है वह तो मानवीय संवेदनाओं की पूँजी है, जिसे शब्द शक्तियों और अलंकारों के माध्यम से जानना एक अधूरा प्रयास होगा।

सौंदर्यशास्त्र समस्त आधुनिक मनोविज्ञानकों एवं समाजशास्त्रों के परिप्रेक्ष्य में कृति की जाँच करता है। समय की माँग के अनुसार कृति की महानता और निकृष्टता की भी घोषणा करता है। इस प्रकार आज की परिस्थितियों में वर्तमान काव्य का सौंदर्यशास्त्रीय विवेचन करना उपयुक्त ही है।

❑ ❑ ❑

14. कीट्स का सौंदर्यात्मक मूल्यांकन

अंग्रेजी साहित्य के महाकवि कीट्स का कार्यकाल बहुत ही छोटा था। वे 31 अक्टूबर, 1795 को घोड़ों के एक व्यापारी के नौकर के घर में पैंदा हुए थे तथा 23 फरवरी, 1821 को इन्होंने देह त्याग दी। इन्हें औपचारिक शिक्षा नहीं मिली थी। बाईस वर्ष की आयु में 1817 में इनकी कविताओं का प्रथम संग्रह प्रकाश में आया। जनवरी 1820 से रुग्णावस्था में ये खाट पर रहे–इस प्रकार इनका साहित्यिक जीवन 1817 से 1820 तक कठिनाई से लगभग चार वर्ष रहा, पर इन्हें अंग्रेजी साहित्य में सौंदर्य के महान अमर प्रेमी के रूपी में जाना जाता है। वे अपने भाग्य में दु:ख भोगना लिखाकर ही पृथ्वी पर आये थे, 9 वर्ष की आयु में पिता तथा 15 वर्ष की आयु में उनकी माता का देहावासान हो गया था। न केवल इतना ही, उनके भाग्य में अपने छोटे भाई की मृत्यु का दु:ख देखना भी लिखा था।

कीट्स मूलत: प्रकृति-प्रेमी थे। उनकी रचनाओं में सौंदर्य भरा पड़ा है तथा मोहकता असीमित है। चित्र प्रस्तुत करने के लिए वे कुशल चितेरे थे, उन्हें उपयुक्त शब्द चुनने में अद्‌भुत कुशलता प्राप्त थी। कीट्स द्वारा लिखे गए गीत सहज हैं, आनंदप्रद हैं, स्वाभाविक हैं तथा अपने आप में पूर्ण हैं। वर्ड्सवर्थ ने प्रकृति की पूजा की जबकि कीट्स ने सुंदरता की–प्रकृति की सुंदरता, नारी की सुंदरता, कला तथा साहित्य की सुंदरता की पूजा की। कीट्स प्रकृति निहारता है, लय सुनता है, फूलों की भीनी-भीनी सुंगध लेता है, प्रकृति का रंगढंग देखता है जो उसके शरीर तथा मन को आनंद देता है तथा सृजनात्मक कार्य करने के लिए कल्पना को उत्तेजित करता है। वे कला तथा साहित्य के समान ही जीवन तथा प्रकृति के सौंदर्य के प्रति संवेदनशील थे। स्वयं कवि कहता है–"मैं मृत्यु के पूर्व कोई अपनी अमर रचना नहीं छोड़ पा रहा हूँ, किसी भी स्मृति-चिह्न या कृति की याद करके मेरे मित्र गौरवान्वित हों, ऐसा भी मैं नहीं कर पाया। मैंने हर वस्तु को सुंदर रूप में लिया है तथा सौंदर्य के इसी सिद्धांत से मैं प्रेम करता हूँ। यदि मुझे जीवित रहने को अधिक समय मिलता तो स्वयं को याद रखने के लिए कोई कार्य कर पाता (किसी कृति की रचना करता)"।

कीट्स की कविता को नैतिकता के मानदंड से दूर धैर्य के साथ, लय तथा ध्वनि का रखते हुए पढ़ा जाना चाहिए। कीट्स को धर्म, इतिहास, नैतिकता तथा व्यवहार की चिंता नहीं थी। यदि उन्हें चिंता थी तो केवल सुंदरता की–सार्वभौमिक सुंदरता की। कोई भी कवि कीट्स से अधिक भावुक व सौंदर्यवाचक न बन सका। कुछ आलोचक तो यहाँ तक कहते हैं कि स्वयं सौंदर्य को कवि कीट्स का उपकृत होना चाहिए जिसने हृदय के गहन स्थल से श्रद्धा के साथ अनुरागपूर्वक निरंतर पूजा की। अपनी कविता Endynion में कवि कहता है :

"A thing of beauty is a joy for ever Its loveliness increases; it will never pass into nothingness."

ये पंक्तियाँ कीट्स को सौंदर्य-प्रेमी करार देने के लिए जीता-जागता प्रमाण है। Hyperion में कीट्स शाश्वत नियमों पर स्पष्टता एवं तीव्रता से विचार करने वाले दर्शनशास्त्री के रूप में पाठकों के सामने आते हैं तथा शीघ्र ही वे शिक्षक वन जाते हैं पर तदनन्तर कवि भावी नागरिकों में संदेश पूछने वाला भविष्यवक्ता बन जाता है। कीट्स के अनुसार सौंदर्य–कल्पना के माध्यम से खोजा जा सकता है। वह सौंदर्य की खोज के लिए तर्क का सहारा तो लेता है पर कल्पना से बढ़कर नहीं। इसका अर्थ है कि कीट्स कल्पना को अधिक महत्त्व देता है। कल्पना की शक्ति अधिक गहरी, पैनी, केंद्रित शक्तिशाली एवं स्पष्ट है। कीट्स को कल्पना के आधिपत्य में पूर्ण विश्वास है। सौंदर्य सत्य के साथ एकाकार है, एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। सौंदर्य ही सतय है तथा असत्य कभी सौंदर्य नहीं हो सकता, असौंदर्य सदैव हेय दृष्टि से देखा जाता है, वह दिमाग को संतोष दे सकता है, पर हृदय को नहीं। इसलिए प्रत्येक वस्तु को सौंदर्य के सम्मुख विनीत एवं नतमस्तक होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, इस भाँति सौंदर्य परम आनंद का उद्गम है। कवि के शब्दों में देखिए–

"Beauty is truth, truth is beauty, that is all Ye know on earth and all ye need to know."

सौंदर्य ही सत्य तथा सत्य ही सौंदर्य है। यही इस पृथ्वी पर तुम सब कुछ जानो और यही सब कुछ तुम्हें जानने की आवश्यकता है।

कवि अपनी कल्पना के नगर का दृश्य प्रस्तुत करता है कि जहाँ वह व्यक्तियों को अपनी कल्पना के अनुसार रहने तथा स्वच्छन्दतापूर्वक घूमते-फिरते चित्रित करता है, वहाँ संगीतज्ञों को वह अपने वाद्य-यंत्रों के बजाते रहने का मनोहारी एवं अंतर्मन से आग्रह करता है। कवि के शब्दों में–

"Heard Melodies are sweet but these unheard Are sweeter."

सुने हुए गीत मधुर होते हैं पर न सुने जाने वाले गीत और भी अधिक मधुर होते हैं .... प्रेमी बालिका का चुंबन कभी न ले सकेगा। प्रेमी द्वारा बालिका

को प्यार करना कितना मधुर है, पर चुंबन न ले पाना और उसकी कल्पना और भी अधिक मधुर हैं"

मनुष्य इस धरती पर एक के बाद एक पैदा होते रहेंगे, वे समस्याओं से भी घिरे रहेंगे, पर ये पंक्तियाँ सदैव उसे संदेश देती रहेंगी। इस रूप में ये पंक्तियाँ साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं, यही संसार का तत्व-ज्ञान है एवं कीट्स का धर्म स्पष्ट होता है। यदि सौंदर्य एवं सत्य के साथ शक्ति जोड़ दी जाय तो कीट्स दार्शनिक एवं उपदेशक के रूप में प्रस्तुत है। स्टोफर्ड ब्रुक के अनुसार, "यदि उनके पास अनुभव करने के लिए हृदय तथा देखने के लिये आँखें हैं तो निर्विवाद रूप से सौंदर्य के सामने सभी नतमस्तक हैं। जब दुनिया अलौकिकता स्वीकार करती है, सौंदर्य की पूजा आराधना करती है, आभार मानती है तो वह अतिंम सत्य बन जाती है। कीट्स का ऐसा चिरन्तन सत्य का सिद्धांत आंतरिक तथा बाह्य रूप-रंग, आकार-प्रकार तथा आत्मा की सुंदरता से जुड़ा हुआ है। सत्य के जुड़े इस सौंदर्य को न उपदेशों की आवश्यकता है और न ही नैतिक नियमों की। कीट्स का सौंदर्य-प्रेम उच्च श्रेणी का है तथा उन्होंने कुशल चित्रकार के रूप में सौंदर्य का चित्र खींचा है।

कविता का उद्देश्य कीट्स के लिए सर्वोच्च आध्यात्मिक जीवन को प्रस्तुत करना ही नहीं था, न वह केवल इन्द्रिय-जनित सौंदर्य का ही उपासक था वरन् सर्वोत्कृष्ट भौतिक सुख को उजागर करना था। आयु बढ़ने के साथ-साथ उसने सौंदर्य की सत्यता तथा शक्ति के साथ संगुथन प्रस्तुत किया। यही उसकी महानता का रहस्य है। नष्ट करने तथा शुद्धता की शक्ति इस भाँति सौंदर्य का नैतिक पक्ष भी स्पष्ट करता है। Madeline पर लिखी कीट्स की पंक्तियाँ देखिये :

Full on this carement above the wintry moon, And throw warm gules on Madeline's breast, As down she knelt for heaven's grace and boon.

Rose bloom full on her hands together prest, And on her selver cross soft amethyst,

And the hair a glory, like a saint;]
She seemed a splendid angel, newly drest,
Save wings for heaven"

वह शयन-कक्ष में पहुँच कर ईश-वंदना के लिए झुकती है, चंद्रमा का हल्का प्रकाश उसके उन्नत, स्वच्छ एवं गोर उरोजो से अठखेलियाँ करता है, खिड़की के रंगीन काँच से लाल प्रकाश छनकर उसके हाथों, गले में लटके चाँदी के क्रॉस तथा बालों पर पड़ता है।–वह परिधान उतारती है, बिस्तर पर लेटती है तथा शीघ्र निद्रादेवी की गोद में सो जाती है–सूर्य की रोशनी तथा वर्षा से निश्चिन्त–बिना जानकारी,

लगता है खिला गुलाब बंद होकर कली बन गया—नीले नभ के नीचे आच्छादित नींद में।

अंग्रेजी साहित्य में शायद ही अन्य कोई ऐसा कवि हो, जो कीट्स के समान सौंदर्यानुभूति कराये तथा आनन्दातिरेक से मंत्रमुग्ध कर दे। इन्होंने टेनीसन आदि समकालीन कवियों को प्रभावित किया तथा इस रूप में वह साथी-कवियों का आचार्य बन गया। सौंदर्य के प्रति अकाट्य अधीरता की कीट्स को अंग्रेजी साहित्य में असाधारण स्थान दिलाती है। स्वयं कीट्स इस सम्मति के समर्थक हैं कि सौंदर्य न केवल सत्य है बल्कि शक्ति भी है। ऐसे सौंदर्योपासक कवि को परम शक्ति ने अकाल ही छीन लिया यदि वह अधिक समय जीवित रहता तो उससे अधिक साहित्यिक योगदान की आशा की जा सकती थी और वह कई कवियों को अपने से पीछे छोड़ देता पर वह जो भी दे सका, जो भी कविताएँ कीट्स ने लिखीं, उससे इनका स्थान अभूतपूर्व रूप से चिरस्मरणीय बना रहेगा। कीट्स द्वारा रचित साहित्यिक योगदान आनंद के स्रोत के रूप में अंग्रेजी साहित्य की अमूल्य धरोहर है। इसीलिए कीट्स की मृत्यु को कई लेखकों तथा आलोचकों ने अपनी निजी क्षति बताया।

ब्राउनिंग के शब्दों में कितना दर्द भरा है :

“Thou wast not born for death, immortal bird.”

ओ कवि (चिड़िया)! “तुम मरने के लिये पैदा नहीं हुए थे।”

❑❑❑

15. प्रयोगशील कविता का शिल्प-विधान

प्रयोगशील कवियों ने नये अलंकारों नये प्रतीकों और नई लय का प्रयोग अन्वेषित किया। इनके परीक्षण के समय एक प्रश्न सामने आता है वह यह है कि शिल्प की नवीन योजना अभिव्यक्तियों की माँग को कहाँ तक अपेक्षित प्रयोजन को सिद्ध करती है। इनकी शक्ति एवं सीमा का भी परीक्षण अनिवार्य होगा।

अप्रस्तुत काव्य के धर्म हैं। प्रयोगशील कवि ने नये भावों और संवेदनाओं को संप्रेषित करने के लिए परंपरा से मुक्त होकर नये अप्रस्तुतों का प्रयोग किया। अप्रस्तुत अलंकारों के अंतर्गत आते हैं तथा इनका मुख्य आधार समांतरता और तुलना होती है। इन अप्रस्तुतों को तीन वर्गों-बौद्धिक रोमांटिक एवं अर्थहीन-में बाँटा जा सकता है। बौद्धिक चिंतन से प्रस्तुत किए गए अप्रस्तुतों में भी बहुत से किताबी है फिर भी काव्योन्मेष को संवर्धित करते हैं। उनमें एक विशेष प्रकार का अर्थबोध भी हे। डॉ० भारती जैसे लोगों ने रोमांटिक अप्रस्तुतों को प्रस्तुत करने में सफलता पाई है। नवीनता के आग्रह के कारण अर्थहीन खोखले अप्रस्तुतों का धड़ल्ले से प्रयोग किया गया हैं।

कुल मिलाकर कहना यह कि बौद्धिक अप्रस्तुतों का सफल चयन कम ही हो पाया है जबकि दावा उन्हीं का किया गया था अधिकांश अप्रस्तुत नये हैं, पर अर्थबोध की क्षमता से विहीन हैं। रोमांटिक अप्रस्तुत अर्थबोध कराने तथा भावोत्तेजन में सक्षम है। अपनी नवीनता के कारण ही विशेष प्रभावापन्न हो उठे हैं।

सप्तक के कवियों ने प्रतीकों का प्रयोग अधिक किया है। प्रतीक समीकरणात्मक होते हैं। इनका स्वातंत्र्य तथा विविध विचारों एवं भावों से संबंधित होना ही इनकी विशिष्टता है। नये प्रतीक अधिक बौद्धिक हुए हैं क्योंकि भावात्मक प्रतीक त्याग दिए गए हैं। ऐसी परिस्थिति में प्रयोग में अधिकतम सर्तकता की आवश्यकता भी है। प्रतीक कविता के शीर्षक के रूप में स्वीकृत हैं। उन्हीं को धुरी मानकर कवि की संवेदना चक्कर काटती है। कविता के भीतर आए प्रयोग अकसर स्वतंत्र और विविध भावानुसंगों से संयुक्त हैं। शीर्षक वाले प्रतीकों को भली भाँति तभी समझा जा सकता है जबकि पूरी कविता प्रयत्न के बावजूद जो कहना चाहते हें नहीं कह पाते। अज्ञेय

के किताबी अप्रस्तुत इसी कोटि के हैं जो संप्रेष्य होने की सामर्थ्य खो बैठे हैं। कुछ पौराणिक प्रतीक प्रयोग भी दिखाई पड़ते हैं। वे उपयुक्त संदर्भ में संवेद्य हैं, पर अर्थच्युत और निस्तेज भी हैं।

प्रयोगशील कविता का लय प्रकरण बड़ा विवादास्पद है 'क्योंकि कवि लय की बात करते हुए भी उसकी उपेक्षा करता रहा है। इसी बीच शब्दलय और अर्थलय की भी बात उठाई गई। इस संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि कवि का यह अराजक क्षेत्र रहा है जिसको जैसा अच्छा लगा किया।

काव्य-भाषा

प्रयोगशील कविता धीरे-धीरे जनभाषा के निकट आने का प्रयत्न करती रही है। जन भाषा के शब्दों मुहावरों, टोन और लय को भी कवियों ने ग्रहण किया। कुशल हाथों में पड़कर उनकी अर्थवत्ता तथा व्यंजकता बढ़ी भी है। विशेषणों का संज्ञा के रूप में एवं नाम धातुओं का प्रयोग दुसह भावों को सरलतापूर्वक व्यक्त करने में समर्थ हुआ है। अज्ञेय ने तत्सम शब्दावली, समासबहुल पदों को अभिव्यक्ति का साधन बनाया। आकर्षा, स्पर्शा, हर्षा जैसी नाम धातुओं का भी प्रयोग किया गया। पेशानी, आगाज बदमस्त, जरतार, जनाजा, वदहोश, मासूम, मजलूम, सनम, फोरोजी आस्तां, तखैयुल जैसे उर्दू के प्रयोग और बाथरूप, ड्राइंगरूप, किनील, बैरा, लॉड्री कैटेसी, नारसीसस, कैथेड्रल गाउन जैसे अंग्रेजी शब्द भी प्रयुक्त हुए।

लक्षणिक प्रयोग की अर्थ गर्भता के लिए हुए जैसे दिन के बुखार रात्रि की मौत, हृदय पंसत्वहीन। ऐंद्रिकता से सन्निहित शब्दों की रचना भी हैं-रोमानी सुरभि, सोने की छांह, रेशमी, रेशमी छांहे, रंगीन चुंबन। अंत में एक बार संपूर्ण काव्य की प्रवृत्तियों पर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि व्यक्ति तत्व, दृष्टि की नवीनता, परंपरा का पुर्नमूल्यांकन (जीवन का पुर्नमूल्यांकन), व्यक्ति सत्य का चित्रण वस्तु-शिल्प दोनों को प्रयोग की सामग्री समझना, अभिजात्य के प्रति रोष, जीवन के वाह्य और अंतर दोनों पक्षों का चित्रण मानवतावाद, महत-लघु, बौदिकता का आग्रह अस्तित्ववादी वेदनायुक्त अभिव्यक्ति, अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में ईमानदारी तथा ढोंग, यथा तथ्य चित्रण के लिए बिंब, योजना, शब्दों में नव अर्थ संस्कार और कम से कम शब्दों में अधिक अर्थ भरने का प्रयत्न सप्तकीय कवियों द्वारा किया गया है। इनकी सफलता असफलता के संबंध में यथास्थान विवेचन भी किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त मानव की महता और वैशिष्टय, मानव-अर्थपूर्ण चेतना की अभिव्यक्ति, स्वतंत्र चिंतन की प्रवृति, समायसामयिकता, यथार्थ की स्वीकारोक्ति, व्यक्ति, पक्ष, प्रयोग बहुलता, वैज्ञानिक-मनोवैज्ञानिक दृष्टि, सार्वभौमिक दृष्टि, विशिष्ट क्षण की अभिव्यक्ति आदि से भी प्रयोगशील कविता कमोवेश जुड़ी हुई है।

प्रयोगशील कविता में युक्त छंद, मात्रिक छंद, रूवाई, लोकगीतों को तर्ज, कविता-सवैया तोड़कर सानेट, वैलेड, ऐकालाप, परिसंवाद, मुक्तगीत, पेरेंथेसिस आदि का प्रयोग भी मिलता है। इस प्रकार छंदों के विकास की बात सामने आती है। कोष्ठक और डैशों का प्रयोग भी अधिक हुआ है। विराम चिह्नों की अवहेलना की गई है। व्यक्तिव्य एवं व्यंजना में नवीनता भी है।

'तीसरा सप्तक' की अधिकांश रचनाएँ मुक्त छंद में लिखी गई हैं। मदन वात्स्यायन ने ग्राम गीतों के आधार पर-'विहाग' और केदारनाथ सिंह तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने ग्रामगीतों की धुनों वाली रचनाएँ भी लिखी हैं। इस तरह लोकोन्मुखता, ग्रामगीतों की लय का इन रचनाओं में समावेश हो गया है। कुछ रचनाओं में उर्दू छंदों का भी प्रभाव प्रतिलक्षित होता है।

अर्थलय–रचना में अर्थलय की भी बात फीकी पड़ चुकी थी। शब्दलय भी तीसरा 'सप्तक' में टूटती दिखाई पड़ती है। काव्यलय गद्य के करीब पहुँच गई है। इस संदर्भ में उद्धत रचनाओं को साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

सृजनात्मक भाषा

दूसरा सप्तक ने भाषा के संबंध में एक निश्चित राह का प्रतिपादन कर दिया था जिसमें बोलचाल की भाषा को कविता को कविता के लिए स्वीकृति मिल चुकी थी। रचनाओं में संस्कृत एवं उर्दू की पदावली भी उसी परिणाम में ग्रहण की गई है। जिस परिणाम में बोलचाल में वे खप जाती हैं।

❑❑❑

16. आधुनिकता बोध और नया काव्य

मानवीय इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या यदि कार्लमार्क्स ने उद्धंद्धात्मक भौतिकवाद द्वारा की थी तो फ्रायड के मनोविश्लेषण ने मनुष्य को उसके मनोभावों के अनेक जटिल तथा गूढ़ रहस्यों से परिचित कराया। 'डार्विन' ने अपने थियरी ऑफ इवोल्यूशन द्वारा मनुष्य की धार्मिक भावनाओं को झकझोर दिया था। बाद में मार्क्स और फ्रायड ने उसे और दृढ़ आधार प्रदान किया। विश्व में जिस प्रकार से वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ औद्योगीकरण का विस्तार हुआ है मनुष्य रूढ़ियों से हटकर अधिक यथार्थ और वैज्ञानिक दृष्टि से देखने लगा है। जो वस्तु कल तक अज्ञान के कारण दैवी चमत्कार बनी हुई थी उसे आज विज्ञान ने तार्किक, संतुलित और स्वतंत्र दृष्टि से देखने की कोशिश की है। इसका प्रभाव यह हुआ कि मनुष्य में वैज्ञानिक बुद्धि का प्रादुर्भाव हुआ तथा उसके पुराने मूल्यों में बदलाव आया। इस बौद्धिक जागरूकता ने परंपरागत रूढ़ियों के स्थान पर यथार्थ को महत्त्व दिया। सभी नैतिक मानदंड बिखरनें तथा टूटने लगे। व्यक्तिगत धरातल से लेकर सामाजिक धरातल तक एक परिवर्तन सहज प्रक्रिया के रूप में सामने आया। इन सभी परिवर्तनों के मूल में आधुनिक भाव-बोध ही प्रमुख है।

आधुनिकता एक विचार अथवा जीवन-दृष्टि है। आधुनिकता को किसी काल देश अथवा जाति की सीमाओं में बाँधना सीमित दृष्टिकोण है क्योंकि विचार अथवा दृष्टिकोण किसी काल अथवा देश-जाति की पूँजी नहीं होते। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि आधुनिकता का सम्बन्ध हमारे उन अनुभवों से हैं जिन्हें हम वैज्ञानिक "औद्योगिक सभ्यता के अनुभव कह सकते हैं"।[1] आधुनिकता जहाँ वर्तमान से संबंधित है वहाँ एक विचार अथवा जीवन दृष्टि भी है जो किसी भी काल में संभव है।

तात्पर्य यह है कि आधुनिकता समय की चुनौतियों को स्वीकार करने और सत्य को ग्रहण करने की एक यथार्थवादी दृष्टि है। सच्चा साहित्यकार युग की धड़कनों का सीधा साक्षात्कार करते हुए बदलते हुए संदर्भों को ग्रहण करते हुए रचना करता है। वह युग मनः स्थिति का भोक्ता और साक्षी होता है। केवल वर्तमान में जीना। 'आधुनिक' होना नहीं है। आधुनिकता बोध' के लिए वर्तमान के प्रति पूर्ण सचेत होना—वर्तमान की गहराई से महसूस करना जरूरी है।[2] आधुनिकता के साथ 'सामाजिक' तथा 'समकालीन' का प्रयोग भी होता है परंतु ये दोनों शब्द वर्तमान से संबद्ध तथा कालवाची हैं। आधुनिकता वर्तमान से संबंधित होते हुए भी मूल्य बोधक हैं।

आधुनिकता के कारण पुराने मूल्यों के प्रति नये आदमी का मोहभङ्ग हुआ है। वैज्ञानिक औद्योगिक प्रगति के अनुभवों को जितना यूरोप में भोगा गया है उतना भारत में नहीं। इसी का कारण है कि भारतीय साहित्य में आधुनिकता के फलस्वरूप जो क्षोभ, उत्तेजना, आक्रोश और विद्रोह है वह यूरोप में नहीं मिलेगा। इसका कारण हमारी और उनकी परिस्थितियों का अंतर ही है। सच्ची आधुनिकता, परंपरा विरोध में नहीं अपितु परंपरा को वर्तमान की कसौटी पर जाँचने परखने में है। जब समय के साथ-साथ बहुत सी वस्तुएँ अपना अर्थ खो देती हैं तब आधुनिकता समयानुरूप उसमें नये अर्थ को प्रतिष्ठित करती है। आज हम अतीत और वर्तमान में एक प्रकार का तनाव महसूस कर रहे हैं। आज का साहित्य इसी तनाव में लिखा गया साहित्य है। आधुनिकता का आधार यथार्थवाद है। आधुनिकता फैशन से बड़ी चीज है। इसे न अनुकरण कह सकते हैं न प्रयोग। यह तो एक सोचने और जीने का एक तरीका है।

साठ के पश्चात भारत में आधुनिकता का बोल-बाला अधिक रहा। चिंतन के क्षेत्र में व्यापक उथल-पुथल, धर्म और ईश्वर से अलग स्वतंत्र मनुष्य की प्रतिष्ठा, यथार्थवादी रूझान, पुराने अंधविश्वासों को तोड़कर जाति संप्रदाय, रंग-भेद साम्राज्य उपनिवेश और शोषण से हीन एक नये सक्षम आदमी की और सम्भवता, पुरानी भाषा, छंद प्रतीकों के स्थान पर बोलचाल की शब्दावली, अनुभव की भाषा तलाशने का प्रयास तथा भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता का आग्रह सभी कुछ आधुनिकता बोध से प्रभावित है। इस आधुनिकता बोध को आज नये आदमी ने अधिक भोगा है। अत: नये साहित्यकार में नयेपन की अधिक संभावनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, तथा आधुनिकता बोध ने साठोत्तरी मानव के चिंतन में परंपरा के प्रति अविश्वास पैदा कर दिया। वैज्ञानिक प्रगति ने मानव-मूल्यों के सामने समस्या पैदा कर दी। धर्म, दर्शन, ईश्वर, प्राचीन मान्यताओं और परंपराओं को मनुष्य ने अस्वीकार कर दिया। अस्तित्व का संकट असंतोष, विद्रोह तथा अकेलेपन की भावनाएँ इन्हीं जीवन पद्धतियों की देन हैं। इन जीवन दृष्टियों के प्रभाव से कविता भी अछूती नहीं रही।

संदर्भ सूची

1. देवेंद्र गुप्त : नयी कविता (अंक 8), पृ. 175

1. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : नये साहित्य का तर्क-शास्त्री पृ. 54

2. It must be clearly understood that the more fact of living in the present does not make a more modern for in that case everyone at present alive would be so. He alone is modern who is fully conscious of the present.

'Modern Man in Search of Soul'—C.C. Jung Page. 227.

❑❑❑

17. सातवें दशक की नई हिंदी/कविता : एक सर्वेक्षण

आधुनिक हिंदी कविता का उद्धगम 19वीं एवं बीसवीं शताब्दियों के संगम बिंदु पर हुआ। इस काल में छायावाद, प्रगतिवाद प्रयोगवाद आदि अनेक बाद पनपे और समाप्त हुए। नई कविता का आंदोलन भी आरंभ हुआ। नई कविता की शब्दावली, उसकी बिंब-योजना, उसके प्रतीक और उसके विभिन्न शैलियों के रूप स्थापित हैं। सातवें दशक की कविता को हम नई कविता न कहकर लक्ष्मीकांत वर्मा के शब्दों में 'ताज़ी कविता' कहें तो यह अधिक उपयुक्त होगा।

इस काल में पहले युग के स्थापित कवियों ने भी रचनाए कीं और वर्तमान नई पीढ़ी के कवियों ने भी कविताएँ लिखीं। इन कवियों की विचार धाराएँ और संवेदनाएँ भी समयानुसार बदलती रही हैं। एक तरफ सुमित्रानंदन पंत, दिनकर, बच्चन, नरेंद्र शर्मा, अंचल जैसे कवि कविता का सृजन करते रहे तो दूसरी तरफ, अज्ञेय, नागार्जुन, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती गिरिजा कुमार माथुर, रघुवीर सहाय आदि प्रयोगवादी कवियों ने कविताएँ लिखीं।

पंत, दिनकर, बच्चन, नरेंद्र शर्मा आदि कवियों ने अपनी कविता के उत्तरकाल में छायावादी भाव-बोध से बाहर आने का प्रयास अवश्य किया है। परंतु इनके भावों को छायावादी प्रभावों से मुक्ति प्राप्त नहीं हुई है। नई अनुभूतियों को अगर उन्होंने महसूस भी किया है तो भी काव्य में उनके स्वाभाविक और सहज प्रतिफलन की अपेक्षा आरोप ही अधिक हुआ है। इन कवियों का काव्य हृदय प्रधान है किंतु आज के बौद्धिक युग में इनकी कविताए सत्य प्रतीत नहीं होती। सातवें दशक की कविता का संदर्भ पूर्ण अविश्वास का है, परंपरा से विद्रोह का है। इसी कारण इन कवियों की काव्य संवेदना आज के संदर्भ से कट जाती है। ये कवि सातवें दशक में भी लिखते रहे हैं परंतु सातवें दशक की मुख्य धारा से इनका कोई संबंध नहीं है।

इस प्रकार सातवें दशक (1960-70) की कालावधि में परंपरागत काव्यधारा विद्यमान रही है। और उसके प्रतिनिधि कवियों के भी अनेक कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं, उनमें से बहुत से काव्य-संग्रह पर्याप्त महत्त्वपूर्ण भी हैं, पर उन सबको सातवें

दशक की कविता की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि वे मूलतः इस दशक का प्रतिनिधित्व नहीं करते बल्कि वे किसी पिछली परंपरा की ही कड़ियाँ हैं।

इस दशक के अनेक संकलनों में से अज्ञेय के 'आगन के पार द्वार', कितनी नावों में कितनी बार, 'सागर-मुद्रा', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ', गिरिजा कुमार माथुर के 'शिलापंख चमकीलें' और 'जो बंध नहीं सका', शमशेर की 'कुछ और कविताएँ', नार्गाजुन की 'प्यासी पथराई', आदि ऐसे महत्त्वपूर्ण संकलन हैं जिनमें कुछ हद तक परंपरा का सातवें दशक की स्थितियों या संवेदना के अनुरूप अनुकूलन हुआ है। इन संकलनों की अनेक कविताओं में से अध्ययन की सामग्री की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

इसके अतिरिक्त मुक्तिबोध का 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', (1964) वीरेन्द्र मिश्र का 'अविराम चल मधुवती', वीरेन्द्र कुमार जैन का 'यातना का सूर्य पुरुष' (1966) भवानीप्रसाद मिश्र का 'चकित है दुख' (1967) और 'अंधेरी कविताएँ, नरेश मेहता का 'मेरा समर्पित एकान्त', (62) भारत भूषण अग्रवाल का 'एक उठा हुआ हाथ, (70), रामदरश मिश्र के 'वेरंग बेनाम, चिट्ठियाँ (62) और 'पक गयी है धूप' (69) कुँवर नारायण का 'आत्मजयी', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के, 'बाँस का पुल' (63) और 'एक सूनी नाव' (66) जगदीश गुप्त का 'हिमबिद्धय', (64) डॉ० देवराज का 'इतिहास का पुरुष', (65) आदि ऐसे प्रमुख कवियों के कविता 'संकलन जो सातवें दशक की कविता का रूप निखारते हैं।

इन संकलनों में से तीन-चार जरूर ऐसे हैं जो सातवें दशक की कविता के संदर्भ में विशेष प्रांसगिक हैं—मुक्तिबोध का 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', केदारनाथ का 'आग का आईना', भारत भूषण अग्रवाल का 'एक उठा हुआ हाथ', और रामदरश मिश्र का 'पक गयी है धूप'। मुक्तिबोध का संकलन यद्यपि प्रकाशन के विलम्ब के कारण उनके मृत्युशैयाग्रस्त होने के समय प्रकाशित हुआ, तथापि उसकी सभी कविताओं की रचना छठे दशक में ही हुई, फिर भी सातवें दशक के कवियों ने अगर पिछले दशक के किसी कवि को अपना अगुवा या प्रिय माना है तो केवल मुक्तिबोध को ही, इसलिए यह संकलन सातवें दशक की कविता का प्रेरणास्त्रोत होने के रूप में उससे जुड़ा हुआ है। 'आग का आईना', एक उठा हुआ हाथ और 'पक गयी है धूप, इन प्रौढ़ कवियों के सातवें दशक की कविता की प्रतिनिधि विषय वस्तु और शैली-शिल्प के साथ जुड़ाव को रेखांकित करते हैं।

सातवें दशक की कविता का वास्तविक प्रारंभ जगदीश चतुर्वेदी द्वारा संपादित और (1963) में प्रकाशित चौदह कवियों के संयुक्त संकलन 'प्रारंभ' से ही होता है। इस संकलन में पहली बार संकलित कवियों की ओर से संपादक ने अपनी पीढ़ी को 'नयी कविता' की परम्परा से तोड़कर प्रस्तुत किया है। संकलन की भूमिका में कहा

गया है "इधर के कवि उस मैनरिजम से मुक्ति पाते जा रहे हैं, जो कि पिछले वर्षों में प्रकाशित तमाम नयी कविताओं (तीसरे सप्तक के अधिकांश कवियों) में दिखाई देती है। और आज की कविता निश्चय ही इतनी विकसित हो चुकी है कि पुरानी मान्यताओं तथा 'क्षण की अनुभूति', लघुमानव तथा अहमन्यता' के फार्मूलाग्रस्त मस्तिष्कों को इससे निराशा होगी"।

स्पष्ट है कि जिन पुरानी मान्यताओं की यहाँ बात की जा रही थी वे नयी कविता की प्रिय मान्यताएँ ही थी। संकलन की पूरी रूपरेखा सप्तकों की प्रतिक्रिया में प्रस्तुत की गयी हैं। 'प्रारंभ' में प्रत्येक सप्तक से दुगने कवि संकलित किये गये हैं–जगदीश चतुर्वेदी, कैलाश वाजपेयी, नरेन्द्र धीर, राजकमल चौधरी केशु ममता अग्रवाल, श्याम परमार, विष्णु चन्द्र शर्मा, श्याम मोहन श्री वास्तव, मनमोहिनी, रमेश गौड़, राजीव सक्सेना, स्नेहमयी चौधरी और र्नमदा प्रसाद त्रिपाठी आदि।

सप्तकों की एक और शिष्ट परम्परा को भी तोड़ा गया है जहाँ 'तार सप्तक' के संपादक उसके अंतिम कवि थे, वहाँ 'प्रारंभ' के संपादक अपने को ही प्रथम कवि के रूप में प्रस्तुत करने का लोभ नहीं छोड़ पाए हैं। पर इस दृष्टि से इस संकलन की प्रशंसा की जानी चाहिए कि 1963 में ही इस संकलन में कुछ ऐसे चुने हुए कवियों को एक जगह संकलित कर दिया गया, जिन्होंने आगे चलाकर सातवें दशक की कविता के स्वरूप-निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इनमें से प्रमुख कवि हैं–कैलाश वाजपेयी, राजकमल चौधरी, श्याम परमार, राजीव सक्सेना और रमेश गौड़।

'प्रारंभ' के बाद इन और सातवें दशक के अन्य प्रमुख कवियों के अपने-अपने कविता संग्रहों के माध्यम से इस दशक की कविता आगे बढ़ती रही। उसका उल्लेख यहाँ व्यर्थ होगा। पर जिन अन्य संयुक्त संकलनों ने सातवें दशक की कविता को रूप दिया, उनकी चर्चा की जा सकती है। ऐसे संकलनों में 'विद्रोही पीढ़ी' (1966), 'विजय' ((1967) 'प्रतिश्रुत पीढ़ी' (1968) और 'अप्रस्तुत' मुख्य हैं। 'विद्रोही पीढ़ी' डॉ० केशनी प्रसाद चौरसिया द्वारा संपादित और इलाहाबाद से प्रकाशित एक छोटा सा संकलन है, जिसमें नीलकांत, केशनी प्रसाद चौरसिया, सुरेन्द्र पाल, बालकृष्ण उपाध्याय, अजित पुष्कल, शलभ श्रीराम सिंह तथा त्रिलोकी नाथ श्रीवास्तव की तीन से लेकर पाँच कविताएँ संकलित हैं।

'विपज', 'प्रारंभ' के ही संपादक श्री जगदीश चतुर्वेदी द्वारा संपादित और दिल्ली से प्रकाशित तीन घोषित अकवितावादी कवियों -गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी और श्याम परमार की चुनी हुई कविताओं का संयुक्त संकलन है। जो सातवें दशक का एक मुख्यधारा अकविता का प्रतिनिधि संकलन कहा जा सकता है।

'प्रतिश्रुत पीढ़ी' डॉ० रणजीत द्वारा संपादित और बीकानेर ये प्रकाशित आठ प्रतिश्रुत कवियों का संकलन है। जिसमें मृत्युजय उपाध्याय, निरंजन महावर, श्याम सुंदर घोष, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, जुगमंदिर तायल, अजित पुष्कल, राजीव सक्सेना और रणजीत की सौ कविताएँ संकलित हैं। निश्चय ही यह संकलन सातवें दशक की कविता की दूसरी मुख्यधारा 'प्रतिश्रुत कविता' का एक प्रतिनिधि संकलन है। यदि इस संकलन में रमेश कुन्तल मेघ, शलभ और धूमिल भी संकलित होते तो निश्चय ही यह इस धारा का एक समग्र संकलन हो जाता।

'अप्रस्तुत' नवल और उर्मिला द्वारा संपादित तथा कलकता से अलग-अलग समय पर छः खंडों में प्रकाशित एक संकलन है, जिसमें सातवें दशक की सभी धाराओं के अन्य महत्त्वपूर्ण कवियों की कविताएँ संकलित करने का प्रयत्न किया गया है। 'अप्रस्तुत' में उपल, चंद्रमौलि उपाध्याय, बजरंग विश्नोई, विजय बहादुर सिंह, ओमदत्त कुंतला कुमार, शलभ श्रीराम सिंह, श्री हर्ष आलोक शर्मा, नीलाम श्रीवास्तव, प्रणव कुमार और सकलदीप सिंह आदि कवि संकलित हैं। पर क्योंकि 'अप्रस्तुत' ने सभी कवियों को संकलित करने का लोभ किया है, इसलिए इसका 'विजय' या 'प्रतिश्रुत पीढ़ी' की तरह का कोई निश्चित व्यक्तित्व नहीं बन पाया है। फिर भी वह सातवें दशक की कविता के आम चेहरे का सही चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

सातवें दशक के प्रमुख कवियों में कैलाश वाजपेयी, श्रीकांत वर्मा, रघुवीर सहाय, राजकमल चौधरी, केदारनाथ सिंह, राजीव सक्सेना, दृष्यंत कुमार, जगदीश चतुर्वेदी जगदीश गुप्त, भारत भूषण अग्रवाल, विष्णु खरे, अशोक वाजपेयी, रमेश कून्तल मेघ, रणजीत, धूमिल, दुधनाथ सिंह, लीलाधर जगूड़ी, ऋतुराज गंगा प्रसाद विमल, श्याम परमार, सौमित्र मोहन आदि कवियों के नाम आम तौर पर लिए जाते हैं। न्याय की दृष्टि से ओम प्रभाकर, उमाकांत मालवीय, रमेश रंजक, नरेश सक्सेना आदि नवगीतकार भी वास्तव में सातवें दशक के ही कवि हैं, पर सातवें दशक की कविता के संबंध में की गई अधिकांश चर्चाओं में इन्हें इस दशक के मुख्य पृष्ठ पर नहीं, हाशिये पर ही स्थान दिया जाता है।

सातवें दशक की कविता में हम तीन मुख्य अंतर्धाराएँ प्रवाहमान पाते हैं। पहली अंतर्धारा में कैलाश वाजपेयी, राजकमल चौधरी तथा अकविता के कवि जगदीश चतुर्वेदी, विमल, श्याम परमार, सौमित्र मोहन आदि आते हैं, जो मुख्यतः मृत्युबोध से पीड़ित या जुगुत्साजनक रूग्ण यौनवाद के कवि हैं। और शेष कवियों में भी यह अंतर स्पष्ट दिखाई देता है कि एक तो यद्यपि केलाश वाजपेयी मृत्युवादी अवश्य हैं, पर यौन जीवन के वैसे भौंडे जुगुप्साजनक चित्र उन्होंने नहीं खींचे हैं जैसे-राजकमल चौधरी या अकवितावादियों ने, और दूसरे इस वर्ग का कोई कवि काव्य-प्रतिभा और शिल्प-चेतना की दृष्टि से कैलाश वाजपेयी के आसपास भी नहीं पहुँच पाता।

दूसरी अंर्तधारा उन कवियों की है जो किसी ना किसी रूप में प्रतिश्रुत कवि कहे जा सकते हैं: केदारनाथ सिंह, राजीव सक्सेना, शलभ, रमेश कुन्तल मेघ, रणजीत, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, धुमिल आदि की अंर्तधारा जो मुख्यत: अपने आपको मुक्तिबोध की नयी प्रगतिशील कविता की धारा से जोड़ती है, और जिसमें समसामयिक यथार्थ का एक व्यापक और सुविचारित चित्र उभरता है। श्री केदारनाथ सिंह और डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव इन्हीं दो धाराओं को सातवें दशक की कविता की मुख्य धाराएँ मानते हैं और इन्हें क्रमश: अकविता और प्रतिबद्ध कविता नाम देते हैं।[1]

किंतु ध्यान से देखा जाए तो इन दोनों धाराओं के बीच प्रवहमान एक तीसरी अंर्तधारा भी साफ दिखाई देती है, जो इन दोनों के कंगारों को छूती हुई और उनसे प्रभावित होती हुई बहती है। इस अर्तधारा में रघुवीर सहाय श्रीकांत वर्मा, चंद्रकांत देवताले, दूधनाथ सिंह, कमलेश, विष्णुखरे, ऋतुराज, मणिमधुकर आदि कवि आते हैं, तजो मुख्यत: आज के दिन-दिन भयानक होते जाते परिवेश में अस्तित्व की बेहूदगियों के कवि हैं।

इन कवियों ने अधिकतर न तो अकविता का फूहड़-नंगा मुहावरा अपनाया है और न प्रतिश्रुत कविता का स्पष्ट विद्रोही स्वर ही। दोनों का ही मिला-जुला रूप इस धारा में दिखाई देता है। फिर भी पहली धारा की दृष्टि की एकांगिता और रूग्णता की जगह इन कवियों में यथार्थ की एक बेलौस पहचान और उसकी असंगतियों का निर्मम उद्‌घाटन मिलता है, जो इसे मूल्यवान बनाता है। दूसरे शब्दों में यह एक प्रकार की आलोचनातमक यथार्थवादी अंर्तधारा है, जिसकी आलोचना यद्यपि किसी निश्चित प्रतिश्रुत तक तो नहीं पहुँचती, पर जहाँ तक पहुँचती है, वहाँ तक अच्छी-खासी मार करती है।

लेकिन अशोक वाजपेयी इनमें से किसी धारा में आते हुए नहीं दीखते। वे वास्तव में अज्ञेय, धर्मवीर भारती, जगदीश गुप्त की नवस्वच्छंदतावादी या नयी रूमानी कविता की ही एक कड़ी है, जिससे सातवें दशक में भी अपनी अभिव्यक्ति पायी है।

कविता के विषय की दृष्टि से सातवें दशक के पूरे काव्य की पड़ताल की जाए तो पिछले दशकों की तुलना में उक्त दशक के काव्य की एक अलग 'इमेज' उभरती है, जो अपनी पूरी बनावट में एकदम अलग है। प्रगतिशील कविता इस दशक में जितनी धारदार, सहज और आम आदमी के मुहावरे में कहीं गई उतनी पहले कभी नहीं थी। यद्यपि मध्यवर्गी कलात्मक माँग अभी बनी हुई है, मगर सातवें दशक में जनवादी अभिव्यक्ति के सौंदर्य-शास्त्र की एक नई पहचान उभरी है और आम आदमी की भाषा का बेहद कलात्मक रचाव सातवें दशक की कविता में पहली बार सामने आया है।

राजनीति के स्तर पर और राष्ट्र के समूचे जीवन के स्तर पर जिस महत्त्व की

घटना भारत-चीन सीमा युद्ध है, साहित्य और हिंदी काव्य के वस्तु तथा शिल्प के विकास के स्तर पर उसी महत्त्व की घटना है मुक्तिबोध के काव्य संकलन 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' और उनके समीक्षा ग्रंथों का प्रकाशन। जिस तरह राजनीतिक स्तर पर पहली घटना ने तमाम परंपरागत राजनीतिक प्रतिमान तोड़ दिए, उसी तरह साहित्य और संस्कृति के स्तर पर मुक्तिबोध की कविता और उनके आलोचना ग्रंथों ने पिछले तीन-चार दशकों के साहित्यिक प्रतिमानों को पूर्णतया खंडित कर दिया और 'नयी कविता' के गर्भ से उत्पन्न व्यक्तिवादी, कलावादी, भाववादी विरासत एकदम नगण्य हो उठा। मुक्तिबोध के साहित्य ने हिंदी साहित्य की परंपरागत भावधारा को झटके से एक नया मोड़ दे दिया। इतना ही नहीं उसने उसे हिंदी की प्रगतिशील कविता की आदिकाल से चली आती जनवादी कविता की परंपरा से जोड़ा।

सातवें दशक की कविता का समग्र स्वरूप व्यवस्था, साम्राज्यवाद, परंपरागत सामंती नैतिकता और पूँजीवादी शोषण का विरोधी है। 'नई कविता' की रूमानी पीड़ा और रूहानी अहंवाद के विपरीत सातवें दशक की कविता में पीड़ा की पहचान और उससे मुक्ति की छटपटाहट है।

सातवें दशक की कविता अस्वीकार से आरंभ होकर विद्रोह और क्रांति तक फैलती हुई कविता है, जो प्रतिपक्ष की भूमिका ही नहीं निभाती एक सबल-सार्थक-सामांतर पक्ष की भूमिका भी प्रस्तुत करती है। लिजलिजी भावुकता और सेक्स के -नक्काशीदार पारदर्शी वस्तु के स्थान पर ठोस और यथार्थ-आर्थिक तथा राजनीतिक व्यष्टिगत और समष्टिगत-व्यवस्था और नागरिक शासक और शासित-शोषक और शोषित-भीतरी और बाहरी-वस्तु सत्यों की मीमांसा करती है। वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षा और कल्पना के स्थान पर सामूहिक मुक्ति और वर्तमान के घृणित यथार्थ के स्थान पर भविष्य के शोषणहीन स्वस्थ समाज की कल्पना को वह अपना विषय बनाती है-

"हमारे हाथों को अब किसी तेज़ धार वाले चाकू
और जलती हुई मशाल की जरूरत है।"[2]

सातवें दशक के काव्य की एक अत्यंत उल्लेखनीय प्रवृति है-क्रांतिकारी हिंसा का समर्थन। हिंसा का समर्थन आमतौर पर इस दशक के कवियों में पाया जाता है हालाँकि उसका स्वरूप हमेशा स्पष्ट नहीं है। यह हिंसा कहीं वर्गीय है और क्रांतिकारी हिंसा के रूप में उभरती है-

तुम्हें दो चार की खुशी के लिए / प्यारा है
हजारों की मौत का कानून /
और हमें लाखों-करोड़ों की खुशी के लिए/
प्यारा है दो चार का खून / मैं / हत्यारा हूँ/[3]

तो कहीं यह शुद्ध घृणा और प्रतिहिंसा का स्वरूप लेकर उभरती है। कवि संहार की बात तो करता है, मगर या तो उसका कारण दिशाहीन आक्रोश होता है या एक तर्कहीन सर्वनाश की इच्छा। दोनों ही स्थितियों में प्रकारोतर से यह संहारेच्छा प्रगतिशील शक्तियों को बल देती है और उस की प्रेरक शक्तियाँ शोषण और उत्पीड़न ही हैं।

कविता के अस्वीकार से आगे बढ़कर व्यवस्था विरोध का सक्रिय सर्मथन सातवें दशक की कविता का मूल स्वर है, जो उसे पूर्ववर्ती प्रगतिशील कविता से अलग और विशिष्ट बनाता है। पिछली कविता की घुटन और मजबूरी में नष्ट होते जाने की नपुंसक स्वीकारोक्ति के स्थान पर अदम्य जिघांसा और निर्णायक युद्ध की चुनौती निश्चय ही प्रगतिशील काव्य-चेतना का अगला कदम है, जिसे हम इतनी स्पष्टता और वेबाकी से पिछले खेमे के किसी कवि में नहीं पाते, मुक्तिबोध में भी नहीं।

इस अंग्रगामी चेतना का उस वह वर्ग संघर्ष है, जो सातवें दशक में अभूतपूर्व स्वरूप ले चुका था और समूचे देश में मजदूरों -मिल मालिकों और किसानों-जमींदारों का संघर्ष अपने उच्चतम रूप यानी सशस्त्र वर्ग संघर्ष का रूप ले चुका था।

सातवें दशक के काव्य की दूसरी उपलब्धि है–उसकी पक्षधरता। आज आम आदमी की बात पूँजीवादी प्रचारक और व्यवस्था प्रिय लेखक भी करने लगे हैं, जिसका उद्देश्य जनता और बुद्धिजीवी की पक्षधरता को धूमिल करना है। परंतु साहित्य में पक्षधरता के सवाल का सही स्वरूप सातवें दशक की ही उपलब्धि है। पक्षधरता के प्रश्न को अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया गया है। कुछ कवि अपने प्रति यानी अपनी रचनाधार्मिता और अभिव्यक्ति की ईमानदारी के प्रति अपनी कविता की जिम्मेदारी महसूस करते हैं और मानते हैं कि वे किसी बाहरी या दलगत राजनीति के दायरों में बँधना नहीं चाहते।

सातवें दशक की कविता की प्रतिबद्धता का स्वरूप बेहद स्पष्ट है क्योंकि इस कविता का नायक निम्नवर्ग तथा निम्न मध्यवर्ग से है। राजनीतिक रूप से अपनी प्रतिबद्धता को स्पष्ट न कर पाने वाले कवियों में भी 'भीड़' के प्रति आसक्ति और अपनत्व का भाव है, क्योंकि वह जानता है कि वह भी इसी 'कीड़' का अंग है। इसीलिए विश्वनाथ त्रिपाठी सातवें दशक के कवि को 'भीड़ का कवि' कहते हैं। उनके अनुसार:

जिस कवि को युवा पीढ़ी का कवि कहा जाता है उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह भीड़ से अपना तादात्म्य कर सका है। मैं इसे कविता का जनतांत्रिकीकरण करता हूँ।[4]

सातवें दशक की कविता में इस भीड़ का स्वरूप बहुत अपरिभाषित भी नहीं है। यह भी शोषित वर्गों की है। जो रूप-नामहीन और अराजक जनसमूह नहीं है और जिसकी क्षमता को लेकर सातवें दशक के प्रगतिशील कवि में न तो कोई दुविधा है और

न ही कोई हीनभाव। इस भीड़ का स्वरूप वह मजदूर में भी देखता है, किसान में भी और मध्यवित में भी–वह मध्यवित जो कहीं न कहीं संघर्ष से जुड़ा है, भले ही उसके संघर्ष का स्वरूप बहुत रेखांकित और प्रमुख न हो। सातवें दशक की कुछ कविताओं में न केवल यह भीड़ अच्छी तरह से परिभाषित है; बल्कि उसके वर्ग संघर्ष का समग्र चित्र बेहद कलात्मकता के साथ उभारा गया है।

इसके अतिरिक्त यहाँ वस्तु और चेतना के धरातल पर ही नहीं सातवें दशक में भाषा के एकदम ताजा और नए प्रयोग किए गए हैं। भाषा का अभिजात्य प्रायः समाप्त हो गया है और सड़क की भाषा और निहायत आम मुहावरों के इस्तेमाल से कविता का नया सौंदर्य शास्त्र उभर आया है। तमाम ऐसे शब्द और मुहावरे जिन्हें पूर्ववर्ती कविता में प्रगतिवादियों द्वारा भी नहीं स्वीकारा गया था, सातवें दशक में स्वीकृत हो गए और एक प्रकार से कवि ने काव्यगत सौंदर्य के तमाम पुराने भाषा प्रतिमान खारिज कर दिए।

हरामखोर, चूतड़, मूत्रमार्ग, योनि, गर्भाशय, बदतमीजी, लफंगा, भड़ुआ, चूतिया जैसे तमाम शब्द जो कविता के प्रदेश से वर्जित थे सातवें दशक में स्थापित कर दिए गए हैं और इन्हीं के साथ कविता का एक नया सौंदर्य शास्त्र रचित हुआ है, जो पिछले काव्य प्रतिमानों को नई अभिव्यक्ति के लिए नाकाफी सिद्ध करता है।

हाथों-हाथ/ समझदार लोग / अधिकारों के बहाने / तुम्हें बाँट लेते हैं / शक और रोग / सीटी बजाते हुए / एक माहौल को चुतिया बनाकर सूर्योदय छाँट लेते हैं / तब गलत क्या है / तुम देह खोदते हो / और बातें चोदते हो /[5]

इस बेवाकी और भाषा तथा अभिव्यक्ति के नंगे तथा आक्रामक तेवर के अलावा सातवें दशक में व्यंग्य का बेहद तीखा और मार्मिक रूप हमें दिखता है। व्यंग्य और विद्रूप को सातवें दशक के कवि ने जितनी सटीक और मारक धार दी है, हिंदी कविता में वह एक अभूतपूर्व प्रवृति है। यह प्रवृति बहुत व्यापक है और प्रायः हर कवि में इसको प्रमाणित करने वाली पंक्तियाँ मिल जाएँगी। सातवें दशक की तमाम श्रेष्ठ कविताएँ जैसे 'मोचीराम' और पटकथा, (धूमिल); 'इस व्यवस्था में (लीलाधर जगूड़ी), 'लुकमान अली' (सौमित्र मोहन) 'दिनचर्या' (ऋतुराज) आदि आरंभ से अंत तक व्यंग्य कविताएँ हैं।

सातवें दशक की कविता में पर्याप्त मात्रा में गहरे, सार्थक और कलात्मक बिंबों का इस्तेमाल किया गया है। नई कविता के बिंबों की तरह इनमें तथाकथित जटिल संवेदनों को नक्काशी के स्तर पर नहीं उकेरा गया है, न ही भूतपूर्व प्रगतिवादियों की तरह इन में मुरैठा बाँधे बाजरे की कगली के सुंदर-स्थूल चित्र बनाए गए हैं। सातवें दशक की कविता के बिंब मानवीय संदर्भों को उनकी गहरी यातना में व्यक्त करने के लिए चुने जाते हैं। बिंबों में फैंटेसी का इतना रचनात्मक और व्यापक प्रयोग हिंदी कविता में

आज के पहले कभी नहीं हुआ। कुछ उदाहरण लें :

"बहुत ही नन्हे-नरम दो हाथ / छू रहे हैं पीठ-गर्दन
–माच / खाँसियों में फेफड़े का दर्द
ढलता है / दिन निकलता है।"[6]

यहाँ कवि ने बेहद स्पष्ट और गहरे मानवीय उपादानों से एक पीड़ित और गरीब परिवार के घर की सुबह का चित्र उतारा है। नन्हें-नरम हाथों के पीठ पर, गरदन और माथे पर फिरने और सुबह होने के साथ फेफड़े के दर्द का ढलना एक पूरी जिंदगी का इतिहास कह जाता हे और आज की पूँजीवादी अमानवीय परिस्थितियों का त्रासद और गहरे रंगोंवाला चित्र उभर आता है। एक और इसी तरह का बिंब:

"तेजी से भागते हुए कई रास्ते कहीं नहीं जाते
केवल थककर लौट आते हैं"।[7]

कवि ने बड़ी वेवाकी से पूँजीवादी जीवन की निरर्थक और तोड़ देने वाली भाग-दौड़ की निरर्थकता को एक सुपरिचित और स्थूल बिंब में ढाल दिया है।

सातवें दशक की कविता का नायक बदल गया है। आज कविता का नायक न तो कोई नाम-रूपहीन उदास पुरुष है, न कवि स्वयं है। बल्कि एक साधारणीकृत औसत मनुष्य की जगह आज की कविता में वर्गमानव नायकत्व पा रहा है। कवि साफ-साफ किसान-मजदूर और निम्न मध्यवित व्यक्ति की बात करता है। वह प्रतिबद्ध है और कविता को वर्ग संघर्ष में हथियार की जगह इस्तेमाल करता है। कविता की और कोई सार्थकता अगर है तो वह उसके लिए वाइप्राउक्स है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सातवें दशक की कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि है काव्य जगत में सीमांतों की समाप्ति और वर्जनाओं का पूर्ण बहिष्कार। कविता के लिए आज कुछ भी कोई भी शब्द, कोई भी भाव, कोई भी मुहावरा, कोई भी वस्तु सत्य–अस्पृश्य नहीं रह गया है। भाषा, अभिव्यक्ति और संवेदना के स्तर पर आज की कविता भारतीय जीवन को उसके समूचे वस्तुगत संदर्भ में उठाती है और उसका बेबाक चित्रण करती है।

संदर्भ सूची

1. केदारनाथ सिंह : 'सन् साठ के बाद की हिंदी कविता' धर्मयुग, 4 जुलाई 1965
2. 'शलभ' श्रीराम सिंह : आग की खदान में उत्तरी शताब्दी' 'कल सुबह होने से पहले'
3. हरिहर द्विवेदी–'हाँ मैंने हत्या की है, 'शुरूआत'–पृ. 6
4. विश्वनाथ त्रिपाठी, 'भीड़, रचना और रचनाकार' अर्थ-6 सं. 'शरद'

5. स: विश्म्भर नाथ उपाध्याय (लीलाधर जगूडी : 'इस व्यवस्था में')"समकालीन कविता की भूमिका"—पृ. 145-146
6. 'शलभ' श्रीराम सिंह : धड़कनों में कहीं, 'कल सुबह होने के पहले' कलकत्ता (1966)
7. आलोक शर्मा : 'लौटे हुए रास्ते' 'अप्रस्तुत' (कलकत्ता) (1920)

❑❑❑

18. फ्रायडवाद और नया काव्य

मनोविज्ञान ने वर्तमान युग में समाजशास्त्र, धर्म, दर्शन एवं साहित्य, सभी को प्रभावित किया हैं मनोविज्ञान के चार मुख्य संप्रदायों (मनोविश्लेषण, प्रयोजनवाद, व्यवहारवाद और आकृतिवाद) में से मनोविश्लेषण ही एक ऐसा संप्रदाय है जिसका व्यापक प्रभाव साहित्य पर पड़ा है; जिसके फलस्वरूप साहित्य-सृजन एवं कलाशास्त्र के संबंध ने नई क्रांतिकारी धारणाएँ, स्थापित की हैं। इस विधि के प्रवर्तक फ्रायड हैं।, फ्रायड के अतिरिक्त एडलर, युंग, आटोरांक, और एडमण्ड वर्गलर ने साहित्य के संदर्भ में इस विधि का विकास किया।

मनोविश्लेषण एक ऐसा स्कूल है, जिसका जन्म न मनोविज्ञान से हुआ, न दर्शन से अपितु इसका जन्म चिकित्सा के कार्य से हुआ। फ्रायड ने इस विधि का प्रयोग चिकित्साशास्त्र में ही किया था। मानसिक रोगों की चिकित्सा करते समय फ्रायड ने देखा कि सम्मोहन-क्रिया (हिपनोटिज़्म) तथा स्वतंत्र साहचर्य से बहुत से पुराने अनुभव पुनः जीवित किए जा सकते हैं। फ्रायड ने यह भी खोज निकाला कि स्वतंत्र साहचर्य की प्रक्रिया में कभी-कभी रोगी अपने स्वप्न याद करता था और उनको कहने लगता था। फ्रायड के दृष्टिकोण से स्वप्न के अंदर एक व्यक्ति अपनी अतृत्त इच्छाओं की संतुष्टि चाहने लगता है, ये वे इच्छाएँ होती हैं, जो जागृत अवस्था में पूर्ण वहीं हुई होतीं। फ्रायड इस निर्णय पर पहुँचे कि इन अनुभवों का मूल कारण कामवृति है, जो दमन के कारण अचेतन अवस्था में पड़े हुए हैं। रेचन-विधि (केयारसिस) ने फ्रायड को यह पूर्ण विश्वास दिला दिया था कि व्यक्ति का कुछ मानसिक भाग ऐसा होता है कि जो छिपा रहता है और उसको उसका ज्ञान नहीं रहता है। रेचन द्वारा अचेतन, चेतन हो जाता है, क्योंकि व्यक्ति उस स्थिति में अपने अतीत को कह दिया करता है।

शेशवीय दमित कामवृत्ति को व्यापक अर्थ देने के लिए फ्रायड ने इसके लिए 'लिविडो' शब्द का प्रयोग किया। इसलिए फ्रायड के सिद्धांत को यौनवाद भी कहते हैं। वर्तमान काव्य की प्रक्रिया, वस्तु, स्वरूप और कवि के विषय में मनोविश्लेषण-विधि का अनूठा प्रभाव पड़ा है क्योंकि साहित्य में फ्रायड का विशेष अनुराग था।

मनोविश्लेषण ने सृजन-प्रक्रिया को चेतन के बजाए अचेतन मन का व्यापार माना। मनोविश्लेषकों का यह दावा है कि मनुष्य के समस्त कार्य-कलापों के पीछे

अचेतन प्रेरणाएँ विद्यमान रहती हैं। इसलिए यह जरूरी है कि कला-सृष्टि का अध्ययन अचेतन की एक विशेष प्रक्रिया के रूप में किया जाए। स्वप्न दिवा-स्वप्न की भाँति काव्य-कल्पना भी मनोमय श्रेणी में ही आती है।

मनोविश्लेषणवादियों ने कला-सृजन को एक अचेतन प्रक्रिया माना है, जबकि सच्चे अर्थों में कला सदा नूतन और सविशेष होने के कारण मात्र प्रक्रिया से भिन्न होती है। कला-सर्जना को मात्र एक यंत्रवृत सुनिश्चित कारणवाद में नहीं बाँधा जा सकता। दूसरा प्रश्न कवि के व्यक्तित्व के संबंध में है, कि यदि लेखक स्नायुरोगी होता है तो क्या उसका कथय उसके स्नायुरोग से ग्रस्त होता है? यदि हाँ, तो उसकी कृतियाँ पाठकों की समझ में कैसे आती हैं?

मनोविज्ञानिक मानकों में ये कमियाँ होते हुए भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि मनोविज्ञानिक अर्तदृष्टि से कलात्मक मूल्य बढ़ जाता है। मनोविज्ञान इन्हीं लेखकों के बीच समृद्ध हो पाता है जो सजग, समसामयिक दृष्टि रखने वाले एवं यथार्थवादी हों। लेकिन अपनी आशाओं और भावों के कल्पना जगत को ही यथार्थ जगत् मानने वाले लेखकों के लिए यह विधि बच्चे के हाथ में तलवार देने के समान है–अर्थात् खतरे से खाली नहीं है। (प्रतीकवादियों एवं अकवियों की दुर्दशा इसका प्रमाण है। जरूरी तो यह है कि कृति में मनोविज्ञानिक सिद्धांत कला बनकर आएँ।

फ्रायडवाद और नया काव्य

आज वह स्थिति है जबकि मर्यादायें खण्डित है, मूल्यहीनता एवं अर्थहीनता का बोलवाला है और टूटे विशृंखल भाव, मनुष्य को इस जहरीले वातावरण में जकड़े हुए हैं। इन सबका प्रभाव जीवन को दार्शनिक कुहासे से निकाल कर तथ्यात्मक विवेचन के लिए प्रयोगशाला में ले आया है। इस विवेचना का कलाशास्त्र पर भी गहरा प्रभाव पड़ा, जिसके फलस्वरूप कला-सृजन, कवि-व्यक्तित्व एवं कला प्रयोजन के विश्लेषण के लिए मनोविज्ञानिक विधियों की सहायता द्वारा कला सिद्धांत धड़े गए और मनुष्य के बारे में हमारे ज्ञान में वृद्धि हुई। नयी कविता ने समसामयिक महौल को इसीलिए बौद्धिक एवं आत्मानुभूति के स्तर पर अभिव्यक्ति देने की कोशिश की है। इन कवियों ने मनोविज्ञानिक सिद्धांतों को काव्यकृत करने के साथ-साथ उन सिद्धांतों के अनुकूल काव्य में व्यक्ति की विभिन्न मानसिक अवस्थाओं का निरूपण भी किया है।

❑❑❑

19. सातवें दशक की कविता का दार्शनिक मूल्यांकन

सातवें दशक के नए कवियों ने कविता के सौंदर्य को युग सापेक्ष परिवर्तनशील अनुभूति माना है। कविता के मानदंड निरपेक्ष और शाश्वत नहीं रह सकते। इन कवियों की मान्यता है कि नई कविता का सौंदर्य बोध शिशुवत जिज्ञासा नहीं है, अपितु एक वैज्ञानिक बोध है, जो कवि के मानस में स्थित यथार्थ जीवन की कुरूपताओं, दुस्हताओं और वैशिष्टयों को यथावत ग्रहण करता है। यह यथार्थ की कटुताओं से बचने की चेष्टा करने के स्थान पर उसको समझने का विश्लेषित करने और अपनाने का प्रयास करता है। सातवें दशक के अधिकांश कवियों की मान्यता है कि मानव यथार्थ ही नई कविता के लिए सौंदर्य है। इस प्रकार उसने समाज और जीवन के सत्य-असत्य, कलुष और पवित्र, सुंदर और असुंदर सभी भाव तत्वों को समान रूप से निरूपित किया है और साहित्यिक विषय वस्तु के संदर्भ में 'त्याज्य' और 'अर्जित' शब्दों की महिमा को बिल्कुल न्यून कर दिया है। यह सब सत्य के निरूपण के लिए किया गया है। इसी सत्य की प्रतिष्ठा के लिए नई कविता के आयामों को विस्तार मिला है और परिणामस्वरूप 'संकीर्ण' तथा 'संकुचित' प्रवृतियों के लिए नई कविता में कोई स्थान नहीं रह गया है।

भाववादी संपर्क-साधना की प्रधानता के साथ-साथ पूर्ण वस्तुवादी संपर्क साधना की प्रक्रिया के कारण अब तक कविता में कठोर विराटता की सौंदर्यमयी अभिव्यंजना नहीं हो सकी थी। सातवें दशक की नई हिंदी कविता में ही 'भाव' और 'वस्तु' का पूर्णतः संबंध स्थापित हुआ। समन्वय की इस प्रक्रिया के कारण काव्य-चेतना में अधिक सुबोधता आ गई।

सातवें दशक की कविता का मानव आस्था-अनास्था, संकल्प-विकल्प, निश्चय-अनिश्चय विवशता परवशता आदि सभी स्थितियों में पाठक के सामने आता है। इतने पर भी वह जीने का विश्वास लिए हुए अपने अस्तित्व और दायित्व के प्रति जागरूक है। अपने परिवेश के प्रति सतर्क रहकर वह राष्ट्रीय से अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं में प्रवेश करने लगा है। इस दृष्टि से वह व्यक्ति होकर भी समाज का महत्त्वपूर्ण अंग है। उसका व्यक्तित्व सामाजिक है। सातवें दशक के नए कवि ने व्यक्ति के माध्यम से

समष्टि की तस्वीर उतारी है।

सातवें दशक की नई कविता में ईश्वर और धर्म के प्रति भी नवीन दृष्टि मिलती है। मानव अस्तित्व की प्रतिष्ठा हो जाने से ईश्वर और धर्म विषयक मान्यताए यथार्थ के ताप में पिघल कर बह गई है। नया कवि विश्वास करने लगता है कि मानव ही सभी कार्यों का मूल और निर्माता है। विज्ञान और वुद्धिवाद के प्रसार ने धर्म को तिरस्कृत कर दिया है। इस कविता ने दार्शनिक पक्ष को भी कथ्य बनाया है। जीवन और उसमें आने वाले दुःख-सुख की विवेचना की गई है। जीवन विषयक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आ गया है। सुख-दुख जीवन यात्रा के बीच पड़ने वाले पड़ाव के रूप में स्वीकार किए गए हैं। इनसे होता हुआ भी व्यक्ति जीवन के अंतिम सत्य को प्राप्त कर पाता है। स्मरणीय यह है कि सातवें दशक की नई कविता में चित्रित वेदना या दुख-दर्द सामाजिक समस्याओं और परिस्थितियों से उद्‌भूत है न कि प्रणयानुभूति से। मृत्यू की अनिवार्यता सभी नए कवियों ने स्वीकार की है। हाँ, इस क्षेत्र में जो नई दृष्टि मिलती है इसके लिए नया कवि अस्तित्ववादियों का ऋणी है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सातवें दशक की कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि है काव्य-जगत में सीमाओं की समाप्ति और वर्जनाओं का पूर्ण बहिष्कार। कविता के लिए आज कुछ भी कोई शब्द, कोई भी भाव, कोई भी मुहावरा कोई भी वस्तु सत्य-अस्पृश्य नहीं रह गया। भाषा अभिव्यक्ति और संवेदना के स्तर पर सातवें दशक की कविता भारतीय जीवन को उसके समूचे वस्तुगत संदर्भ में उठाती है और उसका बेवाक चित्रण करती है। अतः सातवें दशक के नए कवियों के वक्तव्यों के आधार पर संकलित हुई काव्यगत सौंदर्य संबंधी प्रवृत्तियों में भाव तत्त्व और शिल्प तत्त्व का जो विकास हुआ है वह मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद आदि दार्शनिक तत्त्वों से भी प्रभावित है और देश की औद्योगिक प्रगति और बुद्धिवाद की ओर झुकाव के कारण जो आधुनिक भाव-बोध विकसित हुआ है उसने कवियों को विशेष रूप से प्रभावित किया है। अतः सौंदर्य शास्त्र के समसामयिक आयामों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

❑❑❑

20. "साठोत्तरी हिंदी कविता का सामाजिक विश्लेषण"

साठोत्तरी हिंदी कविता में अभिव्यक्ति आक्रोश की खोज करते हुए इस काल खंड का, अर्थात् इन ग्यारह-बारह वर्षों के समाज का अध्ययन करना तो आवश्यक है तो परंतु केवल इसी अवधि के सामाजिक ढांचे के अध्ययन से हम इस काल की कविता के मिज़ाज से परिचित नहीं हो सकते। अध्ययन की सुविधा के लिए दशकों का विभाजन किया जाता है, किंतु कोई भी दशक अपने आप में सर्वथा स्वतंत्र इकाई नहीं होता। एक कड़ी के रूप में यह दशक परस्पर अनुस्यूत रहते हैं। अत: यह संभव नहीं कि साठोत्तर काल में अकस्मात एक-झटके से मोहभंग हुआ हो और आक्रोश की कविता साहित्य में आने लगी हो। वास्तव में इस कालावधि के तीव्र असंतोष एवं वैफल्यग्रस्तता (Frustration) की सुदीर्थ परम्परा है, जिसके पूर्वसूत्र चौथे दशक में ही मिलने लगते हैं। अत: अध्ययन की दृष्टि पूर्व स्वतंत्रता काल स्वातंत्र्योतर काल एवं विशेषत: साठोत्तर काल की परिस्थितियों का अनुशीलन करेंगे। इन कालों की राजनैतिक सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करेंगे, जिनके बीच से साठोत्तर काल में आक्रोश का स्वर उभरा।

कविता का मूल्यांकन सरंचनावादी दृष्टि से हो, सामाजिक दृष्टि से हो अथवा मनोवैज्ञानिक आदि दृष्टियों से यह एक विवादास्पद प्रश्न हो सकता है परंतु आज के युग के इस विषय में दो मत नहीं हो सकते कि कविता का अनिवार्य धर्म है—युगीन परिवेश को उसकी सीमाओं और संभावनाओं के साथ प्रस्तुत करना। आज हम यह मानते हैं और शताब्दियों से मानते चले आए हैं कि साहित्यकार अपने परिवेश से असंपर्क नहीं रह सकता।

आधुनिक युग के निर्माण में राजनीति का अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है अतएव सर्वप्रथम राजनैतिक परिस्थितियों का सर्वेक्षण किया जाएगा।

राजनैतिक परिस्थितियाँ

बीस साल बाद और इस दोपहर में
....
....
....
....

सुनसान गलियों से चोरों की तरह गुजरते हुए।
अपने आप से सवाल करता हूँ–
क्या आज़ादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है या
इसका कोई खास मतलब होता है?

(धूमिल–बीस साल बाद)

विषय के संदर्भ में पूर्व स्वतंत्रता काल को राजनैतिक परिस्थितियाँ विशेष प्रासंगिक नहीं है। पूर्व स्वतंत्रता युग में राजनैतिक क्षेत्र में क्रमशः उपलब्धि प्राप्त हो रही थी। ब्रिटिश सत्ता धीरे-धीरे भारतीयों को अधिकार दे रही थी जिसकी धीमी गति के प्रति एक बेचैनी का भाव व्याप्त था। दूसरी और गाँधी जी का बढ़ता प्रभाव था और समग्रतः तिरंगे के नीचे खड़ा भारतीय असामान्य रूप से आशान्वित था।

1947 में इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण मोड़ आया। स्वतंत्रता प्राप्ति राजनैतिक क्षेत्र में भारत को अपूर्व सफलता थी। शीघ्र ही स्वतंत्र भारत छोटे-मोटे मतभेदों को चीरता हुआ शासन की व्यवस्था स्थापित करता गया। घोर परिश्रम के उपरान्त 26 जनवरी 1950 में भारत का संविधान बनकर तैयार हो गया। भारत में प्रजातांत्रिक गणतंत्र की स्थापना हुई। क्रमशः देश में निर्वाचन हुआ एवं पंचवर्षीय योजना के कार्यक्रम का आरंभ हुआ। शासन के विविध कार्यालय खुले और स्वतंत्र देश में एक गति का अनुभव होने लगा। सर्वत्र लोगों में नवीन उत्साह की स्फूति झलकने लगीं। परंतु स्पष्ट है कि यह उत्साह कहीं गहरे में विभाजन एवं गाँधी जी की हत्या के अविस्मरणीय दंश लिए हुए था। यही कारण है कि किसी भी क्षेत्र में तनिक-सी असफलता से भारतीय जनता तिलमिला जाती थी। दीर्घकालीन संघर्ष से जनमानस का संतुलन डगमगा गया था।

परंतु शनैः शनैः 'स्वतंत्रता' शब्द का अर्थापकर्ष होता गया। ऊपरी तौर पर नेहरू-मंत्रिमंडल सुचारू रूप से चल रहा था परंतु आंतरिक स्तर पर पदलोलुप स्वार्थी गैर जिम्मेदार राजनीतिज्ञों के कारण 'राजनीति का शरीर ऊपर से नीचे तक गंदा हो

गया। वर्षों की दासता ने देश का इतना चरित्र-पतन कर दिया था कि व्यक्ति चाहे किसी भी दल का न हो, कुर्सी संभालते ही भ्रष्ट हो जाता था। जनतंत्र एक मधुर-स्वप्न हो गया। मूढ़, असहाय, निर्धन जनता के लिए मतदान का अधिकार भी अर्थहीन हो गया।

जमींदारी उन्मूलन जैसे प्रयत्नों से बड़े लोगों को श्रेणी समाप्त होती प्रतीत हुई थी, परंतु सच्चे अर्थों में उनका विलयन नहीं हो सका। जमींदार समाप्त हो गए परंतु उनके सामंती संस्कार नेताओं और संसद-सदस्यों ने ग्रहण कर लिए। अंग्रेज भारत छोड़कर चले गए परंतु उनके शासन काल में जिन भारतीयों में उनके 'गुण' संक्रमित हो गए थे, वह स्वाधीनता के बाद बड़ी-बड़ी कुर्सीयाँ संभालकर बैठ गए। इन अफसरों ने अपनी सुरक्षा के लिए भाषा के प्रश्न को इस खुबी से मोड़ा कि संविधान में स्वीकृत हो जाने पर भी हिंदी आज तक भारत की राष्ट्रभाषा नहीं बन पाई।

इन विषम परिस्थितियों में एक ओर वर्ग उभर कर आया जिसे नव-धनाड्य वर्ग (Neo–Rich Class) के नाम से जाना गया। इस वर्ग का एकमात्र उद्देश्य धनोपार्जन था। धन कमाने की विधियों की अच्छाई, बुराई पर इन लोगों ने कभी ध्यान ही नहीं दिया, फलतः चोर बाजारी, रिश्वत, घूस, भ्रष्टाचार इत्यादि का बाजार गर्म हो गया। मक्कार, स्वार्थी, व्यभिचारों लोगों के इस वर्ग के कारण अधिकारी और अधिकृत की खाई और चौड़ी हो गई। 'आर्थिक वैषम्य के कारण अनेक स्तरों पर समाज में तनाव का वातावरण बन गया। धीरे-धीरे 'अँगूठा टेक' लोगों का यह वर्ग इनता शक्तिशाली हो गया कि 'सत्ता होगी उसकी जिसकी पूँजी होगी' की स्थिति चरितार्थ हुई। देश की बागडोर संभालने वाले नेतागण पूँजीपतियों के क्रीतदास हो गए। कमलेम्वर के शब्दों में "भारतीय दूतावासो, वाणिज्य केंद्रों, सांस्कृतिक प्रतिनिधि-मंडलों, वैज्ञानिक कांग्रेसियों शांति-सभाओं, गोलमेज़, परिषदों, सीमा-विवाद कांफ्रेसों आदि सभी अंतराष्ट्रीय विचार-विमर्शों में 'नेता' के पीछे-पीछे निर्णय की असली ताकत रखने वाला यही नया सामंत वर्ग रहा जो सलाहकार के रूप में उपस्थित रहता था बाद में इन फैसलों को व्यावहारिक शक्ल प्रदान करता रहा।"[1] जनता हतप्रभ हो गई, नई पीढ़ी के मन में जीवन के प्रति एक घृणा (disqust) पनप रही थी। समस्त आश्वासन हवा हो रहे थे, कटु यथार्थ को खुली आँखों देखा जा रहा था। अततः असंतोष और अनास्था की मोटी पर्त धीरे-धीरे जनता के मानस में जमने लगी।

देश विचित्र विडम्बनापूर्ण स्थिति में पड़ा था। निराशा इसलिए नहीं थी कि विकास नहीं हो रहा, वरन इसलिए कि उन्नति और विकास से केवल संविधान प्राप्त लोग लाभान्वित हो रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि देश उत्थान की योजना कांग्रेसी अधिक होती थी, व्यावहारिक कम बड़े से बड़ा बाँध या कारखाना बनने से पहले

ही ठेकेदार और विभाग में साँठ-गाँठ हो जाती थी। 'अंधा बाँटे रेवड़ी' का न्याय देश में सवर्त्र चल रहा था।

नेहरू मूलतः कांग्रेस के नर्म दल के नेता थे। सत्य व अहिंसा और शांति उनके मूलभूत सिद्धांत थे। विदेश नीति के विषय में भी वह अत्यंत उदारमन थे, जिसके उदाहरणस्वरूप देश का आदर्श 'पंचशील' था। उसी उदाहरता का परिचय देते हुए देश ने सन् 1957 में चीन के प्रधानमंत्री चाऊ-एन-लाई का अन्य स्वागत किया और हिंदू-चीनी भाई-भाई का नारा बुलंद किया गया। हम इस नारे की प्रतिध्वनियाँ ही सुन रहे थे कि 1962 में चीन का भारत पर जबरदस्त आक्रमण हुआ। भारत स्वतंत्रता का शाश्वत शांतिपूर्ण स्थिति का पर्याय मानकर सेना से सड़क बनवा रहा था। इस आकस्मिक आक्रमण से सेना बोखला गई। भारत के अनेक सैनिक उच्चधिकारी वीरगति को प्राप्त हुए। देश में भारी खलबली मच गई और इसी समय इस सारे घटनाचक्र को लेकर श्री कौल ने एक पुस्तक लिखी 'दि अनटोल्ड स्टोरी' बुद्धि जीवी वर्ग का अविश्वास मानो पूर्णताः को प्राप्त हुआ।

नेहरू काल में विघटन का यह क्रम चलता रहा किंतु सबल नेतृत्व एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व के सम्मुख लोहिया जैसे अपवाद को छोड़कर प्रायः किसी में उनका प्रतिवाद करने का साहस नहीं था। राजनैतिक क्षेत्र में एक स्वप्निल सी दशा चल रही थी परन्तु लालबहादुर शास्त्री के नेतृत्व में जनता ने देखा। कि वह कितनी भटक चुकी है, और देश ने पुनः सही रास्ते में प्रगति-यात्रा आरंभ की। शास्त्री जी ने गरीबी को जिया था, वह देश की गरीबी को सही अर्थों में समझ सके। किंतु इस प्रधानमंत्री के अट्ठारह मास के शासन-काल में पाकिस्तान का आक्रमण हुआ। 'जय जवान जय किसान' का नारा लेकर हम आगे बढ़े किंतु विश्व-राजनीति ने षडयंत्र बनाकर ताशकंद-समझौता हम पर थोप दिया और फिर एक और प्रधानमंत्री की मृत्यु। देश अवसन्न हो गया। ताशकंद समझौते से विदेश नीति कमज़ोर पड़ गई।

इसके बाद श्रीमती गाँधी का मंत्रिमंडल सम्मुख आया। इसके पास मुक और नारा था-'गरीबी हटाओ' इस नए मंत्रिमंडल में नेताओं का शीघ्रता से आवागमन होता रहा। कांग्रेस से विभाजन हो गया। विविध राज्यों के मंत्रिमंडल और मुख्यमंत्री बदलते रहे और ओछे नेता दल बदलते रहे। परन्तु देश की स्थिति में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं आया। धीरे-धीरे प्रजातांत्रिक मूल्यों में देश के शिक्षित वर्ग का विश्वास टूटने लगा। स्थान-स्थान पर हिंसक आंदोलन होने लगे। विदेशी मार्क्सवादी लाल-साहित्य इस दिशा में विशेष सहायक हुआ। सीमांतिक प्रदेशों में इस प्रकार के आंदोलनों का दबाव सर्वाधिक रहा। देश के आंतरिक असंतोष को विदेशी शक्तियों ने दोहना आरंभ किया। यहाँ के क्रुद्ध युवकों को अस्त्र-शस्त्रादि की सहायता मिलने लगी। भारत वर्ष

में नकसलपंथी गुरिल्ला युद्ध शुरू हुआ जो देश के कुछ भागों में विशेषत: बंगाल में एक चुनौती बन कर आया।

इस प्रसंग में सर्वाधिक गंभीर और त्रासद घटना यह हुई कि देश का बौद्धिक वर्ग अर्थात्-अध्यापक और छात्र वर्ग भी इस प्रकार के आंदोलनों की आवश्यकता महसूस करने लगे और फिर विश्वविद्यालयी स्तर पर हड़ताल और हिंसा भी एक सामान्य घटना हो गई। विविध राजनैतिक दलों ने युवा शक्ति को सही गलत ढंग से इस्तेमाल करना आरंभ किया और युवा मस्तिष्क इतने अनुकूलित हो गए कि स्वतंत्र चिंतन की विशेषता लुप्त प्राय हो गई।

इसी ढुलमुल अवस्था में भारत को पुन: झटका लगा। पाकिस्तान का घरेलू झगड़ा शीघ्र ही भारत से जुड़ गया। पश्चिमी पाकिस्तान के अत्याचारों से त्रस्त पूर्वी पाकिस्तान (अब बंगलादेश) से हज़ारों की संख्या में शरणार्थी भारतीय सीमा में आने लगे। भारत की अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हुई। मँहगाई तेज़ी से बढ़ने लगी। लगभग सत्तर लाख शरणार्थियों के भरण-भोषण की व्यवस्था करना सरल कार्य नहीं था। अंतराष्ट्रीय मंच पर भारत का सिर ऊँचा हो गया परन्तु राष्ट्रीय स्तर पर यह सौदा मँहगा पड़ा। चौदह दिन की लड़ाई भी भारत के लिए विशेष हानिकर हुई। राजनैतिक स्तर पर विजय हमारी हुई, हमने कुछ भूमि की हस्तगत कर ली परन्तु साम्राज्य नागरिक की दृष्टि से इस युद्ध का प्रभाव बहुत अनुकूल नहीं पड़ा। गरीबी की समस्या जटिलतम हो गई। शरणार्थी स्वतंत्र बंगलादेश में वापिस चले गए किंतु लगभग नब्वें हजार युद्ध-बंधी (P.o.w's) भारत की भूमि पर बैठे हुए जिन्हें 'जिनेवा कल्वेन्शन' के अनुसार संपूर्ण सुख-सुविधाएँ दी जा रही थीं। जिनका बोझ प्रत्येक भारतीय नागरिक वहन कर रहा था, इसी समस्या को सुलझाने के लिए, दोनों के वापसी संबंधों में एक स्वस्थ मोड़ लाने के लिए जून-72 में शिमला शिखर-सम्मेलन का आयोजन हुआ। किंतु इसका परिणाम भी विशेष संतोषजनक नहीं रहा। समझौते के बाद आज तक युद्ध-बंदियों की समस्या पूर्ववत बनी हुई है।

इन्हीं संघर्षों से गुजरते हुए 15 अगस्त 1972 को भारत ने अपनी स्वतंत्रता की रजत-जयंती मनाई, मगर बुद्धिजीवी सोच रहा था, कहीं हम 'रजत-सोप न्याय' से तो इस पच्चीस वर्षों को रजत नहीं मान रहे?

सामाजिक परिस्थितियाँ

आखिर मैं लूँ भी तो किनसे सलाह
दिन चढ़ते चढ़ते मैं अकेला हो जाता हूँ
मैं हरेक रास्ते पर कुछ दूर चलकर पाता हूँ
यह रास्ता गलत था।

[श्रीकान्त वर्मा : एक दिन][2]

साठोत्तरी हिंदी कविता में निहित आक्रोश की पहचान करने के निमित जब पूर्व-स्वतंत्रता-काल के सामाजिक परिवेश में प्रवेश करते हैं तब केवल एक व्यापक काल खंड सामने आता है जिसमें कोई बहुत महत्त्वपूर्ण मोड़ दिखाई नहीं देता। वास्तव में यह काल गाँधी जी के प्रभावकारी नेतृत्व में इस प्रकार आत्मविस्मृत था कि स्वाधीनता संग्राम से काटकर इस काल की सामाजिक परिस्थितियों को भी समझना कठिन है। अत: इन आंदोलनों की पृष्ठभूमि में ही तत्कालीन समाज के व्यापक फलक पर क्रमश: बदलती रेखाओं को देखा जा सकता है। इस दृष्टि से सन् 1942 का असहयोग आंदोलन एवं उसकी असंभावित असफलता महत्त्वपूर्ण है। 1942 के लगभग राजनैतिक क्षेत्र के मोहभंग की स्थिति तो नहीं आई परन्तु देशवासियों को एक झटका अवश्य लगा। सविनय आंदोलन की असफलता ने सामान्य जनता में नहीं तो कम से कम बुद्धिजीवियों में अपनी नीति के प्रति संदेह का भाव जागृत कर दिया था। परंतु जहाँ तक सामाजिक, परिस्थितियों का प्रश्न है, पूर्व स्वतंत्रता काल में किसी भी स्तर पर, स्पष्ट रूप से अनास्था या अश्रद्धा का भाव उदित नहीं हुआ था। सारी असफलता और पिछड़ेपन का कारण विदेशी शासन को ठहराकर समूचा राष्ट्र उसे उखाड़ फेंकने में सन्नद्ध था। चारों ओर से निराशाजनक परिस्थितियों में घिरे होने पर भी भविष्य के प्रति आशात्वित रहना इस काल की निजी विशेषता थी। इस समय का भारतीय जन तत्कालीन कुरूपता से क्षुब्ध तो था किंतु हतोत्साहित नहीं हुआ था। वह समृद्ध अतीत की स्मृति से महता की अनुभूति कर लेता था अथवा भविष्य के स्वर्णिम प्रभात की आशा में तत्कालीन देश का शमन कर लेता था। वास्तव में यह काल-खंड अत्यंत गतिमान था। सभी वर्ग सामूहिक रूप से एक लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहे थे। कुछ इस प्रकार का वातावरण था कि जीवन को कुरूपताओं की ओर से सबने आँखे मूँद रखी थीं। संपूर्ण देश इस मधुर स्वप्न में हिलोरें ले रहा था कि स्वतंत्रता मिलने पर 'सब कुछ ठीक हो जाएगा'।

नेमिचंद्र जैन के शब्दों में–"स्वाधीनता से पहले और दूसरे महायुद्ध के दौरान, स्वतंत्रता आंदोलन हमारे देश की संपूर्ण चेतना का केंद्र बिंदु था। एक प्रकार से स्वाधीनता आंदोलन संपूर्ण व्यकितत्व को, जीवन के सभी सामूहिक और वैयवितक पक्षों को घेर लेता था। बहुत हद तक अधिकांश आत्मसजागता, वैयक्तिक स्वाधीनता की भावना तथा सामाजिक संस्कार और परिवर्तनशीलता की माँग कहीं न कहीं जाकर स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ जाती थी"[3]

केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं वरन् सामाजिक क्षेत्र में भी कुछ बड़े-बड़े समाज सुधारकों के 'आप्त-वचनों' से जीवन की चदरिया बुनी हुई थी। परिणामस्वरूप स्वतंत्र चिंतन पर विविध प्रश्नों को सोचने समझने की दिशा ही बंद थी। महान वायवी आदर्शों के सहारे यह परतंत्रता का काल व्यतीत हो रहा था। भीतर उठ रही घुमडन

और फैलते शुन्य पर ध्यान देने का किसी को अवसर ही नहीं था। यह समय आधुनिकरण का समय था। समूचा भारतीय जन मानस एक धुन में एक लक्ष्य की ओर बढ़ रहा था। मार्ग की विषमताओं और असंगतियों से सब बेखबर के। बुद्धिजीवी वर्ग में कुछ् खलबली थी, मगर वहाँ से सब कुछ बहुत धुँधला था। सामान्य तौर पर समाज में प्रश्नाकुल स्थिति नहीं आई थी।

पूर्व-स्वतंत्रता काल में समाज एवं परिवार के स्तर पर प्रेम सौहार्द, सहयोग जैसी आस्थामय भावनाओं का आधिपत्य था। क्रमशः दरारें पड़ रही थीं, परंतु उन्हें लक्ष्य करने का न अवकाश था, न उचित अवसर ही। तत्कालीन बौद्धिक वर्ग एवं सामान्य जनता के विषय में डॉ० धर्मवीर भारती के शब्दों में कहा जा सकता है–"यह व्यक्तित्वहीन लबादाधारी बुद्धिजीवी को विकसित हो रहा था, (वह लबादा चाहे बापू का हो या गुरुदेव का) एक ओर तो वह स्वतः सामान्य जन के यथार्थ से पूर्णतः असम्प्रक्त था। पर दूसरी ओर सामान्य जन भी एक विचित्र सांस्कृतिक संकट से ग्रस्त था। वह सदियों से सोया था वह जागे, तन कर खड़ा हो, पूरी तरह आँखे खोलकर चारो ओर देखे और अपने हर कदम को तोड़कर विवेकपूर्ण रखे, इसका समय ही नहीं था, संघर्ष सिर पर था नतीजा यह था कि उसकी अर्द्धमूछित भावनाओं को वश में कर अधसोए, अधजागे हिप्नोटाइज्ड रूप में उसे आगे बढ़ा ही ले जाना था किसी तरह भी हो। .... कर्म मात्र कर्म-विवेक हो या न हो। मूल्य सही हो या गलत हो, संगीत बैठे या असंगति उत्पन्न हो जाए, पर जो काम पूरा होना है वह हो।"[1]

पंद्रह अगस्त 1947 को भारतवासियों के स्वप्न का पूर्वार्द्ध सत्य हो गया अर्थात् देश स्वतंत्र हो गया, भारत में प्रजातांत्रिक गणराजय की स्थापना हो गई। स्वप्न का उत्तरार्द्ध-"सब कुछ ठीक हो जाएगा" पूरी होने से पहले ही, स्वतंत्रता, विभाजन के रकतपात से रंजित हो गई। शताब्दियों से साथ रहने वाली दो जातियाँ इस प्रकार अमानवीय हो उठी कि सत्य, अहिंसा और मानवता जैसे मधुर ध्वनित, सात्विक शबद सहसा निरर्थक, निष्प्राण हो गए। मनुष्य का प्रच्छन्न दमित, पशु अनावृत हो गया और भारत में भीषण हत्याकांड व्याप्त हो गया।

एक अवधि के पश्चात यह नरसंहार भी समाप्त हो गया परंतु भारत की एक ऐसी क्षति हो गई जो आज तक पूर्ववत है। भारतवासियों से उनका विश्वास छिन गया जिसके बल पर वह वर्षों की गुलामी के बंधन से मुक्त हो सके थे। बड़ी संख्या में शरणार्थी भारत और नव-जात भारतीय अर्थव्यवस्था इतना बोझ संभाल नहीं पाई। दूसरी ओर शासन संभालते ही शासक वर्ग के निजी व लघु स्वार्थ सर्वोपरि हो गए और देश-हित गौण हो गया। फलस्वरूप स्वतंत्र भारत गरीबी बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार के कढ़ाव में जा पड़ा।

बिडम्बना यह थी कि स्वतंत्रता से पहले तो एक विदेशी-सत्ता शोषण कर रही थी किंतु अब स्वयं कुछ देशवासी अवसर का लाभ उठाकर अपने ही देश को चूस रहे थे। सारे अवसर उच्च वर्ग एवं हरिजन वर्ग के लिए सुरक्षित थे। मध्यवर्ग का व्यक्ति सब सुविधाओं से बंचित, मुँह बनाये खड़ा रह गया। धीरे-धीरे देश में असंतोष और निराशा छाने लगी। राजनैतिक क्षेत्र में अब भी कुछ प्रभावशाली व्यक्ति नेता रूप में प्रतिनिधि थे परन्तु सामाजिक क्षेत्र में ऐसा कोई प्रभावशाली व्यक्ति शेष नहीं था जो एक नारा देकर मार्गदर्शन करता। फलतः जीवन, अपने अनावृत रूप में दृष्टिगत हुआ। जीवन की विसंगतियाँ उधेड़ कर चुनौती देती प्रतीत हुई। कोई भी किताबी समाधान या आदर्शवादी हल अब असंतोष को परिशांत नहीं कर सकता था।

प्रजातांत्रिक गणतंत्र केवल (Right to Speech) अभिव्यक्ति का अधिकार (Right to Platform) समा करने का अधिकार जैन सैद्धांतिक अधिकारों तक सीमित था। देश के कर्णधार यद्यपि समाजवाद का नारा बहुत जोर से लगा रहे थे परंतु स्थिति यह थी कि अधिकारों और अधिकृत की खाई पूर्ववत बनी हुई थी। निरीह जनता मँहगाई और गरीबी में पिसती गई और कुछ विद्वानों ने दार्शनिक मुद्रा में घोषणा की हम संक्रमण काल से गुजर रहे हैं।

संक्रमण काल के लक्ष्य सामाजिक स्तर पर सर्वाधिक मुखर हुए–पारिवारिक टूटन के स्तर पर स्वांतत्रयोतर काल में संयुक्त परिवार का प्रारूप तो बिल्कुल ही टूट गया था धीरे-धीरे सामान्य परिवार ने भी संबंधों में बदलाव आने लगा। संज्ञाए वही रही परंतु अर्थ घिसने लगे। पति-पत्नी पिता-पुत्र, भाई-बहन आदि की परंपरागत धारणा बदलने लगी। अधिक साफ शब्दों में कहा जाए तो नारी-पुरुष संबंध में चाहे वह किसी भी प्रकार का हो एक मौलिक अंतर आ गया। सारा सामाजिक ढाँचा इतनी तेज़ी से बदल रहा था कि संबंधों को स्थित्यात्मक (Static) बनाए रखना असंभव था। सन 56 के आसपास हिंदू कोडबिल बना स्त्री को तलाक देने की सुविधा मिली, उसे पति एव पिता की संपत्ति में अधिकार प्राप्त हुआ, पुरुष के समाज अधिकारों की प्राप्ति हुई। अधिकांश 'परिवारों में स्त्री आत्मनिर्भर होने के कारण परंपरागत 'चरणों की दासी' नहीं रही। पति रूप में पुरुष भी पूर्ववर्ती युग के समान 'स्वामी' के पद को पूर्ववत सुरक्षित नहीं रख पाया। नारी 'अबला' विशेषण का परित्याग कर सहयोगिनी रूप में समाज की सदस्या बनी। फलस्वरूप स्त्री-पुरुष संबंध से संबंध नैतिक मर्यादाओं में संशोधन की आवश्यकता महसूस होने लगी। बुजुर्ग पीढ़ी इस परिवर्तन से चौंकी और स्वभावानुसार उन्होंने इस दिशा में अवरोध उपस्थित किया। परिणामस्वरूप समाज में परस्पर दो पीढ़ियों में खिंचाव और तनाव की स्थिति आई। पारिवारिक ढाँचा बदल तो रहा था परंतु यह परिवर्तन आमूल नहीं था। संक्रमणकालीन मध्यावस्था इस संदर्भ में सर्वाधिक चरितार्थ हुई।

उल्लेखनीय है कि राजनैतिक क्षेत्र की अपेक्षा सामाजिक क्षेत्र में बदलाव का क्रम या प्रक्रिया धीमी रही। राजनैतिक क्षेत्र में नेहरू के सामने ही सन् 57 में लोहिया जैसे निर्भीक साहसी नेता उनके विरोध में झंडा गाड दिया था किंतु सामाजिक क्षेत्र में परिवर्तन इतनी तेजी के साथ नहीं आया। राजनीति से हम चाहे जितनी संपृक्ति महसूस करें किंतु वह कभी भी हमारे इतने निकट नहीं आ सकती जितना समाज, एवं उसके विविध संस्थान (Institutions) हमारे समीप होते हैं। आंतरिकता की अनुभूति कितनी तीव्र होती है। मोह का भाव भी उतना ही उत्कट होता है। यही कारण है कि सामाजिक स्तर पर छठे दशक में भी परिवर्तन आते रहें, विशेषत: विभाजन के फलस्वरूप पारिवारिक संबंधों में तथापि उस परिवर्तन की तीव्र अनुभूति और प्रतिक्रिया साठोत्तर काल में ही हुई। सामाजिक दृष्टि से छटा दशक अवस्न्नता का काल था। यों कहा जा सकता है कि यह पूरा दशक किसी दुखद घटना के वाद की चुप्पी थी, जिसमें हम त्रास की सघनता को अनुभव करते हुए मौन हो जाते हैं। परिवेशगत परिस्थितियों से आंतरिक स्तर पर मूल्यों में कहीं अधिक तीव्रता से परिवर्तन आ रहा था। परंतु समानान्तर गति से सामाजिक ढाँचे के परिवर्तन की प्रतिक्रिया नहीं हो रही थी। जीर्ण शीर्ण संबंधों और स्थितियों का बोध तो अवश्य है परंतु उन संघर्षों को छिटक देने की मन स्थिति अभी नहीं बन पाई थी। अतीत में आई दरारों को महसूस करने वाला बुद्धिजीवी भी कहीं भीतर खंडिता अतीत का मोह नहीं छोड़ पा रहा था अतीत नूतनता के प्रति उसका सहज आकषण भी उसकी चेतना पर दबाव डाल रहा था।

साठोत्तर काल में स्थितियाँ इतनी तीव्रता और निर्ममता से बदलती गई कि अब अतीत मोहाग्रस्त मन: स्थिति से मुक्त होकर साहित्यकार स्पष्ट अस्वीकार को बेझिझक अभिव्यक्ति करने लगा। परंतु स्थितियों के स्पष्ट स्वीकार ने इस साक्षात्कार के अजनवीपन और फालतूपन के बोध को जाग्रत किया। परंतु ध्यातव्य है कि पश्चिमी देशों और भारत के अकेलेपन या अजनवी में मौलिक अंतर हैं। भारत का अजनबीपन अति परिचय की प्रतिक्रिया है। यहाँ प्रत्येक मनुष्य का जीवन इतना सार्वजनिक और सर्वजनीन हो गया था कि व्यक्ति का मैं उस विस्तार में कहीं उपेक्षित हो जाता है। उसकी सारी गतिविधियों पर समाज कड़ी नज़र रखता है और इस अनुशासन के भीतर उनका व्यक्तित्व अंतर्मुखी होकर अकेला पड़ता जाता है। साठोत्तर काल में इस अकेलेपन से लड़ने का प्रयास हुआ अर्थात् अपने स्वत्व की सुरक्षा के लिए व्यक्ति ने विद्रोह करना चाहा तो आवेश की अतिशयता और सुदृढ़ प्रतिक्रियादी शक्तियों का सामना करते-करते आक्रोश में बदल गया।

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

इतना उखड़ उखड़ गया है
अब आदमी
व गलत गलत रहा
न सही सही रहा

—कैलाश वाजपेयी[4]
(एक खत गालिब के नाम)

सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप ही सांस्कृतिक या, नैतिक क्षेत्र में भी 'मुग्धावस्था' का ही वातावरण था। पूर्व-स्वतंत्रता काल में क्योंकि संपूर्ण भारतीय जनता की वृतियाँ केंद्रीभूत होकर एक लक्ष्य की ओर उन्मुख थीं अत: व्यक्तिवादी चेतना कभी इतनी उभर नहीं पाई कि मूल्यों का पुर्नपरोक्षण या संशोधन हो सकता। साहित्यिक क्षेत्र में व्यक्तिवादी कवियों (बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा आदि) एवं अज्ञेय जैसे उपन्यासकार को छोड़ दिया जाए तो साहित्य एवं समाज के स्तर पर मूल्य-विघटन इस काल में दृष्टिगत नहीं होता।

समग्र रूप से यह काल श्रद्धा, आस्तिकता, सत्य, अहिंसा, परोपकार और सहकारिता का था। यद्यपि गाँधी जी के नारी विषयक विचारों के कारण, नारी-शिक्षा आदि का प्रसंग उठता रहा, परंतु व्यावहारिक जीवन में तत्संबंधी कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं आया। स्वतंत्रता संग्राम में भरे नारी ने भाग लिया। परंतु या तो वे गाँधी आश्रम की ब्रह्मचारिणी सेविका बनीं रही या सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेने वाली बहिन जी'।

यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि वर्षों का बंधन विभाजन के दिनों में झटके के साथ खुल गया और मनुष्य की स्थायी वासनाएँ सांप्रदायिकता की आड़ में खुलकर अभिव्यक्ति हुई। इस देशव्यापी उच्छंखलता ने सरकारी आस्थावान भारतीय को बुरी तरह झकझोर दिया। कालान्तर में विभाजन से निवृत होकर संविधान बनाकर शासन का प्रारूप तैयार करके जब भारतीय नागरिक विश्राम की मुद्रा में बैठने को उद्यत हुआ तो दूसरा झटका लगा। उसने पाया कि वह एक क्रूर दुश्चक्र में फँसा हुआ है। वर्षों की गुलामी ने राष्ट्रीय चरित्र (National Character) को इतना कमजोर कर दिया था कि स्वतंत्रता अपनी अर्थवता खोती प्रतीत होती थी। अधिकार में आते ही प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से भ्रष्ट आचरण करता था—दल या सिद्धांत (ideology) केवल हाथी के दाँत हो रहे थे। इस देश व्यापी भ्रष्टाचार ने आदर्शों पर सीधा प्रहार किया। एक ज्वलत प्रश्न भारतीय-मानस को मथने लगा—क्या यही वह स्वतंत्रता है जिसका इतना ढोल पीटा गया था? तर्क का अलग चरण यह था कि जिन आदर्शों[6]

को सामने रखकर अथवा जिनके सहारे हमने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था उनकी मूल्यवत्ता क्या है? अब प्रबुध्य भारतीय जनता को एहसास होने लगा था कि सदा से जन-नायकों के इंगित पर चलते रहने के कारण उसका व्यक्तित्व वेहद प्रभावलम्बी हो गया था। वह जुलूस में नारे ही दोहराता हुआ चलता रहा, स्वयं तर्क-बुद्धि से उसने मूल्यों और आदर्शों को सामयिक संदर्भ में चुनौती देने का खतरा ही नहीं उठाया। इस प्रकार एक क्रमिक काहे भंग या क्रम भंग की स्थिति आने लगी। डॉ० धर्मवीर भारती के शब्दों में–60 सत्ता और शासन का युग' शुरू हो गया था और जो प्रभामंडल संघर्ष युग में चमक दे रहा था वह शासन का युग प्रारंभ होते ही बुझ गया। और उसके बुझते ही जितने काँच के टुकड़े उसके रोशनी में हीरे बनकर चमक रहे थे, सब मलीन और निस्तेज पड़ गए। साहित्य में भी बड़े-बड़े शब्द व भव्य चेहरे, वे दिव्यता के लबादे, वे शार्टकट समाधानु वे आरोपित व्यक्तित्व, यथार्थ से पलायन करने वाली वे आकर्षक पगडंडियाँ सब सहसा अपनी कटु वास्तविकता को लेकर सामने खुल गई, हम आश्चर्य, दुःख और क्षोभ से तिलमिला कर देखते रहे हैं। कि "अरे' ये सब तो आजायब-घर के शेर थे, आँखें चमक रही थी पर अंदर तो भूसा था।"[1] गहरी राजनैतिक विफलता और बदलते सामाजिक ढाँचे के कारण साठोत्तर काल में स्थापित मूल्यों और आदर्शों के प्रति प्रश्नपरकता का भाव बढ़ा। केवल श्रद्धा के सहारे स्वीकार करने का भाव लुप्त प्राय हो गया। प्रत्येक सजग भारतीय ने परम्परा से चले आ रहे रूढ़िगत विश्वासों की प्रांसगिकता पर प्रश्न चिह्न लगाया। देश की धर्मनिरपेक्ष नीति के कारण शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा की स्थिति शून्य ही रही। तथा नई पीढ़ी पर धर्म का पहले जैसा आतंक नहीं रहा। अंधविश्वास और रूढ़ियों के खंडहर धीरे-धीरे टूटने लगे? राजेंद्र यादव के शब्दों में –"बह हर उस चीज को ठोकर मारकर तोड़ डालना चाहती है जिसे सामने दिखाकर उसे बहकाया जाता है। प्राचीनता की गरिमा? झूठ है कोई नहीं जानता वह कभी भी थी या नहीं। अगर हो भी तो वह आज हमारी कोई मदद नहीं कर सकती। नैतिकता? बकवास है पिछड़े सामाजिक मूल्यों को आज के विकसित समाज पर लादने का दुराग्रह। कौन-सा विज्ञान कहता है कि व्यावहारिक साहसशीलता और शारीरिक नपुसंकता को ही नैतिकता कहते हैं? मर्यादा? अपने वचन और दूसरों की आँखों में धूल झोंकने का नाम मर्यादा है।"

भारत केवल विदेशों से आर्थिक सहायता ही नहीं ले रहा था वरन यहाँ की 'शिक्षित जनता' पर वहाँ की व्यावहारिक (Pragmatic) और भौतिक विचारधारा का भी गहन प्रभाव पड़ रहा था।

ध्यातव्य है कि कुछ वर्षों तक देश का एक वर्ग मार्क्सवाद से विशेष मोहाविष्ट रहा। अर्थात् वह पुनः किन्हीं मूल्यों से अपने के जोड़कर देखने लगा। परंतु साठोत्तर काल में वाद विशेष के प्रति यह पूर्ण समपर्ण का भाव समाप्त हो गया। नेमिचंद्र जैन के शब्दों

में–"लगता है जैसे एक प्रकार का सर्वव्यापी अस्वीकृति कर भाव आज के व्यक्ति के मन में है जिसके कारण सभी परिचित दार्शनिक राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, सौंदर्यमूलक विचार धाराओं और मान्यताओं के चौखटे टूट रहे हैं, और हर विचार, हर सिद्धांत, हर संबंध की बुनियाद पर प्रश्न-चिह्न लगा हुआ है।"[5]

सार यह है कि साठोत्तर काल में यथार्थवादी दृष्टि का चर्म विकास हुआ। 'यूटोपिया' वनाकर हाथी दाँत की मीनारों पर चढ़ रहने की प्रवृत्ति कम होती गई। बौस्टैलजिक (विगतबद्ध) रवैया छोड़कर प्रत्येक महान विचारधारा और महापुरुष को वेनकाब करने का दौर आया। दकियानूस लोगों ने इसे औद्धत्य कहा तो भारतीयता से परेशान लोगों ने पश्चिम की नकल माना। परंतु सहिष्णु साहित्यकार एवं सही अर्थों में सुशिक्षित लोगों ने समय के तकाजे को स्वीकार किया। यह स्वीकार भी दो प्रकार का रहा। एक वर्ग ऐसा था जिसने मूल्यहीनता को समय का सत्य मानकर हथियार डाल दिए किंतु दूसरा वर्ग ऐसा था जिसमें ध्वस्त मूल्यों के स्थानापन अर्थात् नवीं मूल्यों के तलाश की स्फूर्ति थी। क्योंकि कोई नवीन जीवन मूल्य बहुत साफ रूप में उभर नहीं पाए, इसलिए मूल्यों में एक अराजक स्थिति (Chaos) छाई हुई है।

आज अस्वीकार और निषेध का स्वर प्रबल है, परंतु यह मनः स्थिति बहुत सुखद या इकहरी नहीं है। नितान्त निवैयक्तिक ढंग से परिवेशगत विशृंखलता और विसंगति का विश्लेषण करके उससे साम्राज्य विच्छेद करने की प्रक्रिया में मनुष्य दुर्दान्त पीड़ा और टूटन से गुज़र रहा है। परंतु आज उसका स्वत्व इतना प्रबल हो गया है कि वह मनः शांति के लिए किसी पूर्व निर्धारित सरलीकृत समाधान को स्वीकार करने को तैयार नहीं है।

संदर्भ सूची

1. नेमिचंद जैन, अधूरे साक्षात्कार पृ. 158
2. मानव मूल्य और साहित्य : डॉ० धर्मवीर भारती पृ. 83-84
3. डॉ० धर्मवीर भारती : मानव मूल्य और साहित्य–पृ. 87-88
4. राजेंद्र यादव : एक दुनिया समानांतर–पृ. 23
5. नेमिचंद जैन 'बदलते परिप्रेक्ष्य'–पृ. 47

❑❑❑

21. 'एक संवाद कवि केदारनाथ के साथ'

सातवें दशक में इनके दो कविता संग्रह प्रकाशित हुए[1] 'फूल नहीं रंग बोलते हैं और दूसरा 'आज का आईना' है। यह दोनों संग्रह सातवें दशक की नई सौंदर्य दृष्टि के संदर्भ में विशेष प्रासंगिक हैं। नई कविता के वे सशक्त हस्ताक्षरों में से एक हैं।

केदारनाथ अग्रवाल जी में शिल्प के संबंध में एक विकास स्पष्ट नजर आता है, विचारों में भी और कृतित्व में भी। 'युग की गंगा' का कवि 'जनवादी' कवि शिल्प को महत्त्व नहीं देता। वह मानता है कि "अब हिंदी की कविता न रस की प्यासी है, न अलंकार की इच्छुक है और न संगीत की तुकान्त पदावली की भूखी है अब वह चाहती है–किसान की वाणी, मजदूर की वाणी और जन-जन की वाणी।" किंतु यह विचार मार्च, 1947 के हैं। अक्टूबर, 1967 में केदारनाथ अग्रवाल के जनवादी स्वर अपेक्षाकृत उदार या शिथिल हो गये हैं। फूल नहीं रंग बोलते हैं में कवि सूक्ष्म-संवेगों का 'नया कवि' बनने का उपक्रम करता दीख पड़ता है, अतः शिल्प सौंदर्य से अब विमुख नहीं रह सकता। कवि के शब्दों में–"मेरी कविताओं में शिल्प का सौंदर्य मिलेगा। वह सौंदर्य उसके स्थापत्य का शिल्प का सौंदर्य है। वह सौंदर्य अनेक भाव-भंगिमाओं से अपने को व्यक्त करता है। उसकी अभिव्यक्ति अनेक रूपिणी है। जैसे हर सवेरा एक नये सौंदर्य का सवेरा होता है; वैसे मेरी हर कविता एक ये सौंदर्य की कविता होती है।"[2] वे उपदेश-पूर्ण स्वर में, कविता को दीर्घजीवी बनाने के लिए, शिल्प के महत्त्व पर बल देते हुए कहते हैं–"......... कविता को मंजी हुई होना चाहिए। उसका रूप-निखार, उसका शिल्प उसे अधिक काल तक जीवित रखता है। वह दीर्घ जीवी होती है।"[2]

कवि के इस विकसित दृष्टिकोण का प्रभाव उसकी कविता पर भी पड़ी है। यह अंतर 'युग की गंगा' और 'फूल नहीं रंग बोलते हैं की नई कविताओं में देखा जा सकता है।

इसी संदर्भ में कवि केदारनाथ जी से प्राप्त एक प्रश्नावली को पूर्ण रूप से प्रस्तुत करना अधिक प्रासंगिक होगा।

जम्मू-विश्वविद्यालय
दिनांक 27-5-1985

आदरणीय श्रीकेदारनाथ जी

नमस्कार।

मैं "सातवें दशक की नयी हिंदी कविता का सौंदर्य बोध" विषय पर जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू से पी.एच.डी. की उपाधि के लिए शोध-प्रबंध लिख रहा हूँ। आलोच्यकाल में आप के काव्य-संकलन 1 'फूल नहीं रंग बोलते हैं,' (1965) 2. 'आज का आईना', (1970) प्रकाशित हुए हैं। अतः आपके काव्य का गंभीर अध्ययन अपेक्षित है। कवि-व्यक्तित्व और सौंदर्य-दृष्टि का काव्य रूपायन में विशेष योगदान रहता ही है। शायद इसी तथ्य को स्वीकारते हुए अधिकांश नए कवियों ने अपने काव्य संबंधी वक्तव्य लिखे हैं। यदि आप अपने काव्य और व्यक्तित्व के प्रति कुछ कहना चाहें तो सादर आमंत्रण है। इसके अतिरिक्त कृपया निम्नलिखित प्रश्नावली का उत्तर देकर कृतार्थ करें-

प्रश्न 1. क्या काव्य-सृजन में व्यक्तित्व का प्रतिफलन होता है? यदि हाँ तो कैसे?

उत्तर-कवि का व्यक्तित्व सृजन-धर्मी होते हुए भी नित्तांत एकाकी अहंम की यह भी इकाई नहीं होता क्योंकि वह अपने व्यक्तित्व के बाहर के संसार से विभिन्न रूप से प्रभावित और उद्वैलित होता रहता है और तदनुरूप अपने व्यक्तित्व को निर्मित करता रहता है, चाहे प्रगति की और जाये, चाहे विगति की और तो ऐसी दशा में यह कहना गलत होगा कि काव्य-सृजन केवल व्यक्तित्व का प्रतिफलन होता है। व्यक्तित्व पैदाइशी व्यक्तित्व नहीं होता, संसार और समाज से अर्जित और निर्मित किया हुआ होता है जो कवि ऐसा नहीं समझते और मानते वह निराशा की कविता भले ही लिख ले पर ऐसे कवियों की कविता शब्दों को झुठलाती और असम्प्रेष्णीय होकर मर जाती है।

प्रश्न 2. क्या काव्य में भाव का महत्त्व है या। शिल्प का? यदि दोनों का महत्त्व है तो किस अनुपात में और कैसे कैसे?

उत्तर-कवि एक सजग चेतन सृष्टिकर्त्ता है। उसकी चेतना की पकड़ उसके जीवन दर्शन से निसृत होती है। इसलिए कथ्य और शिल्प तो बाद में पाते हैं। पहले संसार से सत्य की और जाना पड़ता है-अंतविरोधों से गुजरना पड़ता है और तब जीवन को समग्रता में परखना पड़ता है और फिर यथा सामर्थ्य उस सत्य को रूपायित करना पड़ता है। तभी कथ्य और शिल्प एक दूसरे के सहयोगी होकर रचना का कारण बन जाते हैं। यदि कवि ने शिल्प-केवल शिल्प-के लिए रचना की है तो शिल्पीय

भले हो, भाषा की समर्थ मानसिक इकाई नहीं हो सकती। शिल्प मानवीय मानसिकता के निखार के लिए प्रयुत्क होता है ना कि स्वयं की अभिव्यक्ति के लिए। भाव और विचार कथ्य में ही प्रकट होते हैं। इसलिए शिल्प उन्हें व्यक्त करे यही स्तुत्य है अनुपात की बात तो उठती ही नहीं।

प्रश्न 3. आपके विचार में सौंदर्य के तत्त्व कौन-कौन से हैं और काव्यगत अभिव्यक्ति के उपादान कौन-कौन से हैं?

उत्तर–प्रत्येक व्यक्ति एक संश्लिष्ट इकाई होनी चाहिए। होती भी है। न हुई तो अच्छी नहीं होती। वह सौंदर्य के तत्त्वों को समाहित करने के लिए नहीं लिखी जाती। भले ही सौंदर्यमूलक तत्व उसमें आ जायें। वह भी सार्थक अभिव्यक्ति के लिए अभिव्यक्ति के उपादन भी चाहे कितने हों, उन्हीं को लेकर कोई भी अच्छी कविता नहीं लिखी जा सकती। कवि की समग्र अर्जित चेतना सक्रिय होती है–द्वंद्व करती है तब सौंदर्यमयी अभिव्यक्ति देती है। कविता न तो केवल सौंदर्य की सृष्टि है न काव्य के निर्धारित संस्कारों की अभिव्यक्ति वह तमाम जीवन-बोधों के प्रभावों से रची जाती है। वह तभी निरंतरता को लिए हुए मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना बिम्बित करती है।

प्रश्न 4. आपकी कविताओं का क्रम दृष्टि विकास क्रम के अनुसार है या रचनाकाल क्रम के अनुसार।

उत्तर–कवि की कविताओं का क्रम दोनों प्रकार से देखना होता है। विकास क्रम के दौरान भी कभी-कभी क्रम ने पिछले संस्कारों से प्रेरित होकर रचना कर बैठता है। वह तब अपने विकास क्रम से हटा-सा होता है। काव्य-क्रम के अनुसार भी ऐसा ही होता है। सन् 90 में कवि सन 40 की मानसिकता की कविता उस समय के सत्य को पकड़ने के लिए लिख बैठता है। कोई सर्वमान्य नियम नहीं है कि कवि उसे ही अपनाये रहे। तुलसीदास ने रामकथा लिखी जो हजारों वर्षों पहले की कथा है इसमें भी कोई अपवाद नहीं। परंतु अधिकाशंतया में सत्य को ही पकड़ता रहा और उसे अभिव्यक्ति देता रहा। चाहे वह सत्य पहले का हो जो इस समय का और इस समय उसने अभिव्यक्ति पाकर सामायिक दायित्व निभाया।

प्रश्न 5. आपकी सौंदर्य दृष्टि के विकास क्रम के महत्त्वपूर्ण पहलू क्या-क्या हैं? उनका प्रतिफलन (आपके विचार से) किन कविताओं में हुआ है?

उत्तर–यह तो विस्तार से एक-एक कविता लेकर, विवेचन की माँग करता है। महत्त्वपूर्ण पहलू यही है कि आदमी-आदमी बनें-विभाजित विखंडित न रहे, वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए संघर्ष करे, जो ऐसा कर रहे हैं उनको सहानुभूति और संवेदना दे। सत्य को समर्पित इस दुनिया को साफ-सुथरी दुनिया बनायें, जहाँ न शोषण हो, न दोहन हो, न व्यक्ति क्रम हो, न युद्ध हो, न प्रशसति हो।

प्रश्न 6. काव्य सौंदर्य के अंतर्गत आप (वाद + आग्रह) वादग्रह को महत्त्व देते हैं या व्यक्ति-अनुभव को? और क्यों?

उत्तर—बादोन्युक्त काव्य की आवश्यकता पर पहले विचार करें। वर्ग विभाजित समाज में रहे कर जो भी मानसिकता बनती है वह वर्ग विभाजित होती है। इसलिए जब वर्ग विभाजित समाज न रहेगा तब मानवीयता के महान अच्छे संस्कार बनेंगे और कवि भी वैसे ही काव्य की रचना करेंगे। ये भी तो संभव नहीं है कि ऐसी स्थिति में रहती हुए किसी वाद से बचा जा सके। वाद वाद में भी अंतर होता है। वह वाद जो अनुभूति पर बल देता है वह भी वही करता है जो कि शोषक चाहता है कि जनता कवि की कृतियों से जाग न जायें। इसलिए अनुभूति की महत्ता स्थापित की जाती है।

प्रश्न 7. चित्रकला मूर्तिकला, संगीतकला और काव्य कला के सौंदर्यगत तत्वों का अन्तरालंबम्वन क्या है? क्या आपकी काव्य कला में इन तत्वों का प्रतिफलन हुआ है?

उत्तर—प्रत्येक काव्य के अपने-अपने स्थूल और सूक्ष्म माध्यम है। चित्रकला, संगीतकला, मूर्तिकला, काव्यकला से भिन्न इसलिए है कि प्रत्येक क्षेत्र के कार्यकर्ता को उस क्षेत्र के माध्यम में ही कर्म करना पड़ता है। कोई अपनी कविता में जो मूर्ति निर्मित्र करता है वह शब्दों और अर्थों से बनाता है। पत्थर की मूर्तियाँ खजुराहों में हैं। उनसे भी श्रेष्ठ मूर्तियाँ कवियों ने पहले भी बनायी हैं। इसलिए बस इतना ही होगा कि तत्वों के आधार पर कविता या काव्य नहीं बनती बल्कि सत्य की सृष्टि करना होती है, चाहे जैसे हो।

प्रश्न 8. सौंदर्य में रंग, आकार, संतुलन, अनुपात और ऐक्य का क्या महत्त्व मानते हैं और क्यों?

उत्तर—इनका कुछ-न-कुछ क्षीण प्रभाव पड़ता ही है। पर पारखी इनके पार जाकर कला या कृति में उस सत्य को पकड़ना चाहता है जो कला या रंग का कारण बनता है।

प्रश्न 9. शिल्प सौंदर्य संबंधी उदाहरण स्वरूप (अपने) काव्यांश दें।

उत्तर—मैंने शिल्प के लिए कभी भी कविता नहीं की, न शिल्प को आधार मानकर सौंदर्य की सृष्टि की। मेरी कविताऐं पढ़ें सोचें-विचारें उनमें जीवन का कोई-न-कोई पक्ष विकसित हुए है। शिल्प-सौंदर्य दिखाने के लिए मैंने कभी ऐसा नहीं किया।

प्रश्न 10. भाव-सौंदर्य संबंधी उदाहरण स्वरूप (अपने) काव्यांश दें।

उत्तर—फिर वही कहूँगा कि भाव सौंदर्य अलग से कोई सौंदर्य नहीं है। मैं फिर भी कवि-परम्परा में नहीं गया। जीवन में जागते-जीते हुए जीवन की ध्वनियों को

सुनता शब्दों को व्यक्त करता है। वह भाव हो गये हों, या विचार हो गयी हों या कुछ और मैं अपना सामाजिक-राजनीतिक-मानवीय सत्य पूरी सक्षमत्ता के साथ कविता में व्यक्त करता हूँ। यही मेरी साधना रही है। अब भी है।

बांदा

13-6-95

आपका आज्ञाकारी

नाम-तिलक राज शर्मा

पता-Boys Hostel Room No. 46 Old Campus University of Jammu. (J.&K.

संदर्भ सूची

1. केदारनाथ अग्रवाल: 'युग की गंगा'-पृ. 8 (ग)
2. केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं-पृ. 5

❑❑❑

जम्मू - विश्वविद्यालय
दिनांक 27-5-1985

आदरणीय श्री केदारनाथ जी

नमस्कार।

मैं "सातवें दशक की नयी हिन्दी कविता का सौन्दर्य बोध" विषय पर जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू से पी. एच. डी. की उपाधि के लिए शोध-प्रबन्ध लिख रहा हूँ। आलोच्यकाल में आप के काव्य-संकलन १ 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' (1965) २ 'आज का आइना' (1970) प्रकाशित हुए हैं। अतः आपके काव्य का गंभीर अध्ययन अपेक्षित है। कवि-व्यक्तित्व और सौन्दर्य-दृष्टि का काव्य रचापन में विशेष योगदान रहता ही है। शायद इसी तथ्य को स्वीकारते हुए अधिकांश नये कवियों ने अपने काव्य सम्बन्धी वक्तव्य लिखे हैं। यदि आप अपने काव्य और व्यक्तित्व के प्रति कुछ कहना चाहें तो सादर आमन्त्रण है। इसके अतिरिक्त कृपया निम्नलिखित प्रश्नावली का उत्तर दे कर कृतार्थ करें -

प्र. (1) क्या काव्य-सृजन में व्यक्तित्व का प्रतिफलन होता है? यदि हाँ तो कैसे -

उत्तर - कवि का व्यक्तित्व सृजन-धर्मी होते हुए भी नितांत स्थायी कभी भी नहीं होता क्योंकि वह अपने व्यक्तित्व के बाहर के संसार से [illegible] रूप से प्रभावित और उद्वेलित होता रहता है और तदनुरूप अपने व्यक्तित्व को निर्मित करता रह जाता है चाहे प्रगति की ओर जाये, चाहे [illegible] की ओर। [illegible] यह कहना गलत [illegible] व्यक्तित्व का [illegible] होता है। व्यक्तित्व [illegible] संसार और प्रभाव से [illegible] और [illegible] हुआ होता है। [illegible] कविता [illegible] कविता को अपने शब्दों को [illegible]

(2) क्या काव्य में कवि का [illegible] शक्य है? यदि दोनों का महत्व है तो किस अनुपात में और कैसे कैसे?

उत्तर - [illegible]

[illegible] परखना पड़ता है और फिर [illegible] उस सत्य को रूप [illegible]
पड़ता है। इसी क्रम में शिल्प के [illegible] के सहयोग से होकर
रचना का प्रकार बन आते हैं। यदि कवि ने शिल्प-केवल शिल्प के
लिए [illegible] तो [illegible] भाषा की [illegible]
नहीं हो सकती। [illegible]
[illegible]
[illegible]

प्र. 3. आपके विचार से सौन्दर्य के तत्व कौन-कौन से हैं और काव्यगत अभिव्यक्ति के उपादान कौन-कौन से हैं?

उत्तर — प्रत्येक कविता एक संश्लिष्ट इकाई होनी चाहिए। [illegible] यह [illegible] नहीं होती। वह सौन्दर्य के तत्वों [illegible] के लिए नहीं [illegible]। [illegible] अभिव्यक्ति के लिए अभिव्यक्ति के उपादान भी [illegible], उसी [illegible] लेकर कोई भी अच्छी कविता नहीं लिखी जा सकती। [illegible] कवि की [illegible] होती है — [illegible] अभिव्यक्ति देती है। कविता [illegible] सौन्दर्य की [illegible] है [illegible] संस्कारों [illegible] से [illegible] जाता है। वह [illegible] मनुष्य की [illegible]

प्र. 4. आपकी संकलित कविताओं का क्रम दृष्टि विकास क्रम के अनुसार है या रचनाकाल क्रम के अनुसार।

उत्तर — [illegible] देखना होता है [illegible] करता हूँ। यह [illegible] से हटा [illegible] काल-क्रम के [illegible] होता है। सन् ८० से [illegible] सन् ९० की [illegible] कविता — उस समय के सत्य को पकड़ने के लिए — [illegible] नहीं है कि कवि उसे [illegible] है। [illegible] नहीं है। परन्तु [illegible] में सत्य को [illegible] पकड़ता [illegible] और उसे [illegible] रहा। चाहे वह सत्य [illegible] जो इस [illegible] पकड़ में [illegible] और इस [illegible] उसे [illegible] पाकर [illegible]

प्र. 5. आपकी सौन्दर्य दृष्टि के विकास क्रम के महत्वपूर्ण पहलू क्या-क्या हैं? उनका प्रतिफलन (आपके विचार से) किन कविताओं में हुआ है?

उत्तर — यह तो विचारक से एक-एक कविता लेकर ~~[illegible]~~ विवेचना की माँग करता है। महत्वपूर्ण पहलू यह है कि आदमी आदमी [illegible] बँटे, विभाजित [illegible] विखंडित न हो, [illegible] की [illegible]

[illegible] संघर्ष करें, जो ऐसा कर रहे हैं उनको सहयोग करें और साथ दें। यथार्थवादी शासन-[illegible] का विरोध करें [illegible] इस दुनिया को [illegible] जहाँ न शोषण हो, न दोहन हो, न आतंक हो, न युद्ध हो, न दुःशासन हो।

प्र. (6) काव्य सौन्दर्य के अन्तर्गत आप (वाद + आग्रह) वादाग्रह को महत्व देते हैं या व्यक्तिगत अनुभव को? और क्यों?

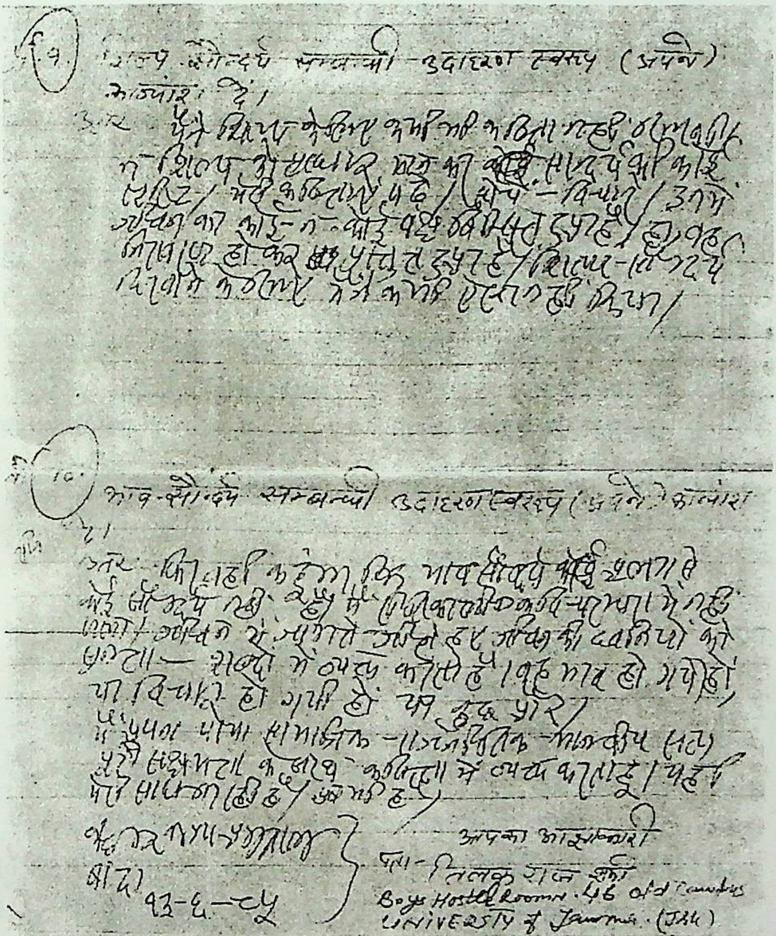
उत्तर वादों से युक्त काव्य की आवश्यकता पर पहले विचार करें। वर्ग विभाजित समाज में रह कर जो भी भावुकता [illegible] है वह वर्ग [illegible] होती है। इस लिए जब वर्ग विभाजित समाज न रहेगा तब मानवीय एकता [illegible] संस्कार बनेंगे और [illegible] की रचना करेंगे। [illegible] किसी वाद से बंधा जा सके। वाद [illegible] होता है। [illegible] कविता [illegible] कवि भी [illegible] है।

प्र. (7) चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला और काव्य कला के सौन्दर्यगत तत्वों का अंतरावलम्बन क्या है / क्या आपकी काव्य कला में इन तत्वों का प्रतिफलन हुआ है?

उत्तर प्रत्येक कला के अपने अपने स्थूल और सूक्ष्म माध्यम हैं। चित्रकला, मूर्तिकला में, संगीतकला में, काव्यकला में [illegible] है। प्रत्येक क्षेत्र के कलाकार को उस क्षेत्र के माध्यमों से ही [illegible] पड़ता है। कवि अपनी कविता में जो [illegible] है वह शब्दों [illegible] [illegible] और [illegible] है। [illegible] कवियों ने पहले [illegible] गायक, [illegible] कविता [illegible]

प्र. (8) सौन्दर्य में रंग, आकार, सन्तुलन, अनुपात और रूप का क्या महत्व मानते हैं और क्यों?

उत्तर:— [illegible] पढ़ना ही है। पर [illegible] उस [illegible] को [illegible] चाहता है [illegible]



9. शिल्प सौन्दर्य सम्बन्धी उदाहरण स्वरूप (अपने) काव्यांश दें।

उत्तर: मैंने शिल्प के लिए कभी भी कविता नहीं लिखी। न शिल्प को [illegible] शब्द पर भी कोई दृष्टि। मेरी कविताएं पढ़ें। बोध - विचार। उनमें जीवन का कोई न कोई पक्ष अभिव्यक्त हुआ है। हां वह [illegible] हो कर प्रस्तुत हुआ है। शिल्प-सौन्दर्य दिखाने के लिए मैंने कभी प्रयोग नहीं किया।

10. भाव-सौन्दर्य सम्बन्धी उदाहरण स्वरूप (अपने) काव्यांश दें।

उत्तर: मैं यही कहूंगा कि भाव सौन्दर्य कोई अलग से कोई सौन्दर्य नहीं [illegible] नहीं [illegible] जीवन की [illegible] शब्दों में व्यक्त करता हूं। वह भाव हो गये हों या विचार हो गये हों या कुछ और। [illegible] सामाजिक - राजनैतिक - मानवीय (सब) पूरी [illegible] कविता में व्यक्त करता हूं। यही मेरी साधना रही है। [illegible]

[illegible]

दि. १३-६-८४

आपका आज्ञाकारी

पता - तिलक राज शर्मा
Boys Hostel Room No. 46 Old Campus
UNIVERSITY of Jammu. (J&K)

22. सातवें दशक में प्रकाशित कविता-संग्रह

[1961 में प्रकाशित कविता संग्रह]

क्र.	लेखक का नाम		काव्य-संग्रह का नाम
1.	अज्ञेय	:	आंगन के पार-द्वार
2.	अज्ञेय	:	एक बूँद सहसा उछली
3.	अज्ञेय (स)	:	तीसरा सप्तक
4.	अवध नारायण शर्मा	:	पार्थ पत्नी महासती
5.	आनंद मिश्र	:	हिमालय के आँसू
6.	उदय शंकर भट्ट	:	इत्यादि
7.	उमा शंकर	:	तारों से पूछिए
8.	काका हाथरती	:	दुलती
9.	केशवचंद्र वर्मा	:	वीणापाणि के कंपाउण्ड में
10.	कुँवर नारायण	:	परिवेश हम तुम
11.	गिरिजा कुमार माथुर	:	शिलापंख चमकीले
12.	गिरिजा कुमार माथुर	:	आज के लोकप्रिय कवि
13.	दिनकर	:	उर्वशी
14.	नरेश मेहता	:	बोलने दो चीड़ को
15.	नीरज	:	आज के लोकप्रिय कवि
16.	नीरज	:	प्राणगीत
17.	पोद्दार रामावतार अरुण	:	वाणाम्बरी (प्रबन्ध काव्य)
18.	बच्चन	:	त्रिभंगिका
19.	बलदेव प्रसाद मिश्र	:	व्यंग्य विनोद
20.	बालकृष्ण राव	:	अर्धशती

21.	मुनिबुद्ध मल्ल	:	आवर्त्त
22.	मोहन लाल शार्दूल	:	पथ के गीत
23.	राधेश्याम त्रिपाठी	:	कीर्तिस्तम्भ
24.	रामगोपाल शर्मा दिनेश	:	सारथी (महाकाव्य)
25.	विष्णु दत्त शास्त्री	:	शिवचरितामृत (महाकाव्य)
26.	शमशेर बहादुर सिंह	:	कुछ और कविताएँ

1962 में प्रकाशित कविता संग्रह

क्र.	लेखक का नाम		काव्य-संग्रह का नाम
1.	अंचल	:	प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी
2.	कुमारी राधा	:	सरयू कछारों की हरिगी
3.	कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह	:	अंतराल
4.	गोपाल राठौर	:	दीप के स्वर
5.	जीवन प्रकाश जोशी	:	आग और आकर्षण
6.	दुष्यन्त कुमार	:	आवाजों के घेरे
7.	देवराज दिनेश	:	जीवन और जवानी
8.	लखीर बनारसी	:	गगोजमन
9.	नरेश मेहता	:	मेरा समर्पित एकांत
10.	नरेश मेहता	:	संशय की एक रात (काव्य नाटक)
11.	प्रभाकर माचवे	:	तेल.की पकौड़ियाँ
12.	बच्चन	:	चार खेमे चौसठ खूँटे
13.	बालकृष्ण शर्मा नवीन	:	प्राणार्पण
14.	महेंद्र भटनागर	:	जिजीविषा
15.	मुकुंददेव शर्मा	:	रामझरोखा
16.	रामदरश मिश्र	:	वेरंग बेनाम चिट्ठियाँ
17.	रामप्रिय मिश्र लालधुआँ	:	कालसर्प (कथा काव्य)
18.	रूप नारायण त्रिपाठी	:	वनफूल
19.	लक्ष्मीचंद्र मिश्र	:	शंखशक्तिवाद (महाकाव्य)
20.	वचनदेव कुमार	:	ईहामृग

21.	वासुदेव नारायण आलोक	:	आलोक और आरोह
22.	श्रीमन्नारायण	:	रजनी में प्रभात अंकुर
23.	हरिकृष्ण प्रेमी	:	रूपरेखा

1963 में प्रकाशित कविता संग्रह

क्र.	लेखक का नाम		काव्य-संग्रह का नाम
1.	आनंद मिश्र	:	अंकुर की आस्था
2.	ओम प्रकाश आदित्य	:	थर्ड डिवीजन
3.	कृष्ण नंदन पीयूष	:	दर्द की मीनार
4.	गयाकृष्ण द्विवेदी	:	नन्दि ग्राम (महाकाव्य)
5.	गोपी कृष्ण गोपेश	:	तुम्हारे लिए
6.	गुलाब	:	मेरे भारत मेरे स्वदेश
7.	चंद्रमौलि उपाध्याय	:	किरण गांधारी
8.	छविनाथ मिश्र पागल	:	अंगना फूले कयनार
9.	जगदीश चतुर्वेदी	:	(स.) प्रारंभ
10.	दिनकर	:	परशुराम की प्रतीक्षा
11.	दुष्यंत कुमार	:	एक कंठ विषपाथी (काव्यनाटक)
12.	देवराज दिनेश	:	भारत माँ की लोरी
13.	देवराज दिनेश	:	पूरवैया के नूपुर
14.	नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी	:	चाँदनी का जहर
15.	नरेंद्र शर्मा	:	प्यास निर्झर
16.	महादेवी वर्मा	:	(स.) हिमालय
17.	महेंद्र भटनागर	:	संतरण
18.	विजय निर्बाध	:	हँसना मना है
19.	शलभ	:	बादल और बाँसुरी
20.	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	:	बाँस का पुल
21.	सियाराम शरण गुक्त	:	गोपिका
22.	सीताराम दीन	:	माँगलिका

1964 में प्रकाशित कविता संग्रह

क्र.	लेखक का नाम		काव्य-संग्रह का नाम
1.	अजित कुमार, विश्वनाथ त्रिपाठी	:	(स.) कविताएँ : 1963
2.	आनंद मिश्र	:	प्रियदर्शी (खण्ड काव्य)
3.	आनंद शंकर माधबन	:	दीपाराधना
4.	इंदु जैन	:	चौसट कविताएँ
5.	उदयशंकर भट्ट	:	पूर्वापर
6.	ओमप्रभाकर, भागीरथ भांगव	:	(स.) कविता : 1964
7.	कांता	:	समयातीत
8.	केदारनाथ मिश्र प्रभात	:	समुद्यत राष्ट्र
9.	केलाश वाजपेयी	:	संक्रांत
10.	गजानन माधव मुक्तिबोध	:	चाँद का मुँह टेढ़ा है
11.	गुलाब	:	अहल्या (खण्ड काव्य)
12.	चिरंजीत	:	कहे पैरूडीदास
13.	जगदीश गुप्त	:	हिमबिद्द
14.	जयंशकर त्रिपाठी	:	मिट्टी के मानव
15.	दिनकर	:	आत्मा की आँखे
16.	दिनकर	:	कोयला और कवित्व
17.	दिनकर	:	मृतितिलक
18.	दिनकर सोनक्लकंर	:	अंकुर की कृतज्ञता
19.	नंद किशोर झा	:	प्रिय मिलन (महाकाव्य)
20.	नरेंद्र शर्मा	:	उतर जय
21.	नरेंद्र शर्मा	:	प्यासा निर्भर
22.	प्रेमचंद विजयवर्गीय	:	गूँज उठी शहनाई
23.	बच्चन	:	अभिनव सोपान
24.	ब्रजकिशोर नारायण	:	चतुर्मखी
25.	बालकृष्ण राव	:	अर्धशती
26.	बालकृष्ण शर्मा नवीन	:	हम विषपायी जनम के

27.	भंवर लाल दशोरा	:	रूपंदन
28.	भारतभूषण अग्रवाल	:	कागज के फूल
29.	मनोहर प्रभाकर	:	विदा की सांझ
30.	माखनलाल चतुर्वेदी	:	बीजरी काजल ओज रही
31.	माणिकचंद रामपुरिया	:	मधुज्वाल
32.	मुख्तार सिंह दीक्षित	:	जय भारत
33.	रणजीत	:	ये सपने ये प्रेत
34.	रामाकांत शुक्ल	:	संजीवन
35.	रवींद्र कृष्ण मजवूर	:	डुबकियाँ
36.	राजेंद्रच्यवन	:	नागफली के फूल
37.	रामखेलावन वर्मा	:	चंद्रगुप्त मौर्य (महाकाव्य)
38.	रामप्रसाद मिश्र	:	बौदिक रस
39.	रामावतार त्यागी	:	सपने महक उठे
40.	लालचंद जेतली	:	स. एक नगर के सुरभित सांस
41.	श्यामनंदन किशोर	:	सूरज नया पुरानी धरती
42.	श्यामसुंदर घोष	:	नए शिशु का जन्म
43.	श्रीकृष्ण सरल	:	सरदार भगत सिंह(महाकाव्य)
44.	शिवदयालु भ्रमर	:	छलकते आँसू फिर चुनौती
45.	सुमित्रानंदन पंत	:	लोकायतयन (महाकाव्य)
46.	सुमित्रानंदन पंत	:	हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

1965 में प्रकाशित कविता संग्रह

क्र.	लेखक का नाम		काव्य-संग्रह का नाम
1.	अज्ञेय	:	पूर्वा
2.	उदयशंकर भट्ट	:	मुझमें जो शेष है
3.	उपेंद्र	:	वंशी और वंदन
4.	उपेंद्र नाथ अश्क	:	बरगद की बेटी
5.	उमादत त्रिपाठी	:	दिगंबरा
6.	काका हाथरथी	:	काका के कारतूस

7.	केदारनाथ अग्रवाल	:	फूल नहीं रंग बोलते हैं
8.	गुलाब	:	उषा (महाकाव्य)
9.	चंद्रदत्त अवस्थी	:	मेरा सपना
10.	तिलक	:	कालिदास (महाकाव्य)
11.	देवराज	:	इतिहास पुरुष
12.	नीरज	:	गीत भी अगीत भी
13.	प्रणव कुमार वेद्योपाध्याय	:	नरक की क्रांति में मैं
14.	बच्चन सिंह भृंग	:	बढ़ते चरण थिरकते पांव
15.	भारतभूषण अग्रवाल	:	अनुपस्थित लोग
16.	महादेवी वर्मा	:	संघिनी
17.	माहेश्वरी सिंह महेश	:	मालिका
18.	माहेश्वरी सिंह महेश	:	बीज और अणु
19.	रघुवीर शरणमित्र	:	मानवेंद्र (महाकाव्य)
20.	रवींद्रनाथ त्यागी	:	कल्पवृक्ष
21.	रवींद्र राजहस	:	अप्रिय ब्रूयात
22.	रंजन वर्मा	:	मिस इड़ा
23.	राजेंद्र प्रसाद सिंह	:	आओ खुली बयार
24.	राम कुमार भारद्वाज	:	गीत कलश
25.	राम गोपाल परदेशी	:	सदा बहार गुलाब
26.	राम प्रसाद मिश्र	:	देश दिल्ली और अहं
27.	राहगीर	:	राहगीर के गीत
28.	विनोद चंद्र पाण्डेय	:	कृष्ण पक्ष
29.	वेद प्रकाश वटुक	:	त्रिविधा
30.	शंभुदयाल सक्सेना	:	चरणोदक
31.	शिवचंद्र शर्मा	:	कविताए शिव चंद्र शर्मा की
32.	सत्यपाल युघ	:	अंधेरी आकृतियों के पार
33.	सीताराम झा श्याम	:	संकेत अनुभूतियों के

1966 में प्रकाशित कविता संग्रह

क्र.	लेखक का नाम		काव्य-संग्रह का नाम
1.	अज्ञेय	:	सुनहले शैवाले
2.	अशोक वाजपेयी	:	शहर अण भी संभावना है
3.	उमाशंकर	:	वीर भर आए बदरा
4.	काका हाथरसी	:	काका की फुलमाड़ी
5.	काका हाथरसी	:	काकदूत
6.	किरण जैन	:	स्वर परिवेश के
7.	गोपाल कृष्ण सर्राफ	:	रिमझिम
8.	गोपाल प्रसाद व्यास	:	रग, जंग और व्यंग्य
9.	गोपाल प्रसाद व्यास	:	पत्नी को परमेश्वर मानो
10.	गोविंद चंद्र पाण्डेय	:	अग्निबीज
11.	चंदूलाल चंद्राकर	:	मालूशाही
12.	जगन्नाथ प्रसाद मिलिद	:	नई किरण
13.	जितेंद्र सिंह राठौर	:	उत्स
14.	तिलक	:	निराला (महाकाव्य)
15.	निशांतकेतु	:	रेत की उर्वर शिलाएँ
16.	नीरज छावड़ा	:	स. अंकुर
17.	बच्चन	:	नागर गीता
18.	वलदेवराज शांत	:	रसीली रूबाइयाँ
19.	माहेश्वरी सिंह महेश	:	अनलवीणा
20.	मनोरमा मधु	:	चांदनी भी धूप
21.	मस्लखान सिंह	:	(स.) तीन सौ गीत
22.	मूलचंद्र प्राणेश	:	नागदमन (खण्डकाव्य)
23.	मुंशी राम शर्मा	:	विरहिणी (महाकाव्य)
24.	राज कमल चौधरी	:	मुक्ति प्रसंग
25.	राजेश्वर गुरु	:	जीवन-रेखा

26.	राजीव सक्सेना	:	आत्मनिर्वासन तथा अन्य कविताएँ
27.	रॉविन शां पुष्प	:	(स.) हिंदी को लोकप्रिय हास्य कविता
28.	रामबचन राय	:	टटकी कविता
29.	राही मासूम रजा	:	उठारह सौ सत्तावन
30.	शलभ श्रीराम सिंह	:	कल सुबह होने से पहले
31.	शिव मंगल सिंह सुमन	:	पर आँखे नहीं भरी
32.	शिव मंगल सिंह सुमन	:	विंध्यहिमालय
33.	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	:	एक सूनी नाव
34.	सी. डी. गाँधीसागर	:	कोलाहल
35.	स्नेहमयी चौधरी	:	एकाकी दोनों
36.	हँसमुख शाह	:	गीतप्रिया

1967 में प्रकाशित कविता संग्रह

क्र.	लेखक का नाम		काव्य-संग्रह का नाम
1.	अकिंचन शर्मा	:	गीतों का क्षण
2.	अज्ञेय	:	कितनी नावों में कितनी बार
3.	एंथोनीदीपक	:	दीपक के गीत
4.	ऋतुराज	:	एक मरण धर्मा और अन्य
5.	काका हाथरसी	:	काका के कहकहे
6.	काका हाथरसी	:	काका कोला
7.	काका हाथरसी	:	काका की काकटेल
8.	काका हाथरसी	:	काका की कचहरी
9.	कुँवर चंद प्रकाश सिंह	:	अपराजिता
10.	कैलाश वाजपेयी	:	देहांत से हटकर
11.	कृष्णनंदन पीयूष	:	योंगनिद्रा
12.	केदारनाथ मिश्र प्रभात	:	शुभ्रा
13.	केदारनाथ मिश्र प्रभात	:	सेतुबंध

14.	गंगा प्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी	:	विजय
15.	गुरु भक्त सिंह भक्त	:	आधुनिक कवि - 12
16.	गोपाल प्रसाद व्यास	:	भाभी जी नमस्ते
17.	चंद्रमोहन हिमकर	:	माँग का सिंदूर
18.	दूधनाथ सिंह	:	अपनी शताब्दी के नाम
19.	नजीर बनारसी	:	जवाहर से लाल तक
20.	नंदलाल नयन	:	कविता-कुंज
21.	नरेंद्र शर्मा	:	बहुत रात गए
22.	नरेश मेहता	:	संशय कीएक रात (काव्यनाटक)
23.	प्रभाकर माचवे	:	मेपल
24.	प्रभास चंद्र शर्मा	:	तृष्णा
25.	प्रेमलता वर्मा	:	सुइयों का पैरहन
26.	बच्चन	:	बहुत दिन बीते
27.	बजरंग बिश्नोई	:	विस्थितियाँ
28.	बालकृष्ण राव	:	आधुनिक कवि -13
29.	बालकृष्ण मिश्र	:	अनुभूतियों के घेरे
30.	मखखान सिंह सिसौदिया	:	सूली और शांति
31.	महेंद्र भटनागर	:	बंद नेह की दीप हृदय का
32.	मिश्री लाल जैन	:	व्यंग्य सतसई
33.	मानिक बच्छावत	:	एक टुकड़ा आदमी
34.	रघुवीर सहाय	:	आत्महत्या के विरुद्ध
35.	रणजीत	:	इतिहास का दर्द
36.	रमेश मिश्र	:	व्यक्ति और अभिव्यक्ति
37.	रवींद्र त्यागी	:	आदिम राग
38.	राजा मिश्र (स.)	:	खुलते सीप निकलते मोती
39.	रामेश्वर शुक्ल अंचल	:	आधुनिक कवि -11
40.	ललित शुक्ल	:	समरजयी
41.	ललित शुक्ल	:	स्वप्न नीड़

42. वचनदेव कुमार	:	ओ अजन्या सुनो
43. वीरेंद्र मिश्र	:	अविराम चल मधुवंती
44. शंभुनाथ प्रवासी	:	बंधन के सेतु
45. शिव नारायण संतप्त	:	अनुभूति के दर्पण
46. श्याम नारायण प्रसाद	:	श्री गुरु गोबिंद सिंह (महाकाव्य)
47. श्री कांत वर्मा	:	दिनारम्भ
48. श्री कांत वर्मा	:	मायादर्पण
49. श्री कृष्ण प्रसाद गुप्त	:	मंथन

1968 में प्रकाशित काल-संग्रह

क्र. लेखक का नाम		काव्य-संग्रह का नाम
1. सुमित्रानंदन पंत	:	किरण-वीणा
2. सुमित्रानंदन पंत	:	पौ फटने से पहले
3. सीताराम प्रयास	:	बल्लकी
4. स्वर्ण किरण	:	कविताएँ स्वर्णकिरण की
5. हृदयानंद तिवारी	:	मुस्कुराते आँसू
6. होशियार सिंह चौहान	:	कवितांजलि
7. अक्षय जैन	:	पंख कटा मेघदूत
8. अचल राजपूत	:	क्षितिज की खोज
9. अम्बिका दत्त त्रिपाठी व्यास	:	उर्वशी (खण्ड काव्य)
10. अम्बिक प्रसाद दिव्य	:	अंतर्जगत
11. ओंकार शरद (स.)	:	एक अकेला आदमी
12. कन्हैयालाल गुप्त सलित्त	:	स्वर तुम्हारा बाँसुरी मैं
13. कृष्ण बिहारी सहल	:	अहं और आत्मबोध
14. काका हाथरसी	:	चकल्लस
15. काका हाथरसी	:	म्याऊँ
16. काका हाथरसी	:	हास्य कविताएँ
17. केदारनाथ मिश्र प्रभात	:	राष्ट्रपुरुष (खण्ड काव्य)
18. कीर्ति चौधरी	:	खुले हुए आसमान के नीचे

19.	किरन जैन	:	यात्रा और यात्रा
20.	गंगा प्रसाद कौशल	:	राधा (खण्ड काव्य)
21.	गोपाल प्रसाद व्यास	:	माफ़ कीजिए
22.	गोपाल प्रसाद व्यास	:	तो मैं क्या करूँ
23.	गोपाल प्रसाद व्यास	:	मेरी पत्नी भली तो है लेकिन
24.	गोपाल प्रसाद व्यास	:	हास्यरस के हल्ले
25.	गिरिशजशरण अग्रवाल	:	(स.) युग ध्वनि
26.	गिरिजाकुमार माथुर	:	जो बंध नहीं सका
27.	जमुनादास सचान	:	व्यंग्य सतसई
28.	जगदीश दत्त दीक्षित	:	हिमशतक
29.	जगदीश ओझा सुंदर	:	गीत जिंदगी के
30.	तास पांडेय	:	रंजना
31.	त्रिलोकीशरण डंठल	:	चकाचक
32.	त्रिभुवन चतुर्वेदी	:	सुरभि के चरण
33.	दूधनाथ सिंह	:	सुरंग से लोटते हुए
34.	ध्रुवदेव मिश्र पाषाण	:	एक शीर्षकहीन कविता और पाँच आय कविताएँ
35.	निर्भय हाथरसी	:	जीजा जी
36.	नीलाभ	:	संस्मरणारम्भ
37.	परमेश्वर राय	:	किरण बाँसुरी
38.	प्रफुल्ल पटनायक	:	गाँधी का पुर्नजन्म
39.	दी० आदेश्वर राव	:	अंतराल
40.	पोददार रामावतार अरुण	:	महाभारती (महाकाव्य)
41.	बच्चन	:	कटती प्रतिमाओं की आवाज
42.	भक्त विनायक	:	सुपर बाजार
43.	भवानी प्रसाद मिश्र	:	चकित है दु:ख
44.	भुवनेश्वर प्रसाद सिंह	:	अपराजिता (खण्डकाव्य)
45.	मिणिमधुकर	:	खण्ड खाड़ पाखण्ड पर्व
46.	माणिचंद्र रामपुरिया	:	संदीप्ति
47.	मणिक चंद रामपुरिया	:	संवेग

48.	मुरलीधर नारायण प्रसाद सिंह	:	कविता-कुंज
49.	मृत्युंजय उपाध्याय	:	प्रत्यक्ष
50.	योगेंद्र दिवाकर	:	आँसू की गीता
51.	राजनारायण वर्मा	:	सौ कविताएँ
52.	राजेंद्र संजय	:	तुमने पुकारा है
53.	रामगोपाल रूद्र	:	द्रोण (खण्डकाव्य)
54.	रामदेव आचार्य	:	अक्षरों का विद्रोह
55.	रामेश्वर शुक्ल अंचल	:	गांगेय (खण्डकाव्य)
56.	राय प्रभाकर प्रसाद	:	झेलने के लिए
57.	लक्ष्मीकांत वर्मा	:	अतुकांत
58.	विजय कुमार खरे	:	बीवी हो जिसकी बी.ए.
59.	विजय चंद	:	जंग लगे सपने
60.	विजय रंजन वर्मा	:	नीलपांखी
61.	विनोद चंद्र पाण्डेय	:	विकलप
62.	शकुंतल माथुर	:	अभी और कुछ
63.	सकलदीप सिंह	:	आकस्मिक
64.	सियाराम शरण गुप्त	:	सुनंदा (खण्डकाव्य)
65.	सुरेश चंद्र सुमन	:	विकल्प या प्रक्षेप या कविता
66.	सुमित्रा नंदन पंत	:	तारापथ
67.	सुमित्रा नंदन पंत	:	स्वर्णिम स्थक रथचक्र
68.	हरिकृष्ण प्रेमी	:	संघर्ष के स्वर
69.	हरिनारायण व्यास	:	मृग और तृष्णा

1969 में प्रकाशित कविता संग्रह

क्र.	लेखक का नाम		काव्य-संग्रह का नाम
1.	अम्बिका प्रसाद दिव्य	:	गाँधी पारायण (महाकाव्य)
2.	अशोक गुप्त	:	परस्पर प्रकाश में
3.	आनंद शंकर माधवन	:	जाह्नवी
4.	आनंद शंकर माधवन	:	संजीवनी

5. ओम प्रकाश गौतम	:	जीवन के स्वर दो
6. काका हाथरसी	:	काका के धड़ाके
7. काशी नाथ पाण्डेय	:	उजाड का एक कवि
8. कुँवर चंद्र प्रकाश सिंह	:	विजया (खण्डकाव्य)
9. कृष्ण मोहन प्यारे	:	अनावृत
10. गोपाल शरण शर्मा	:	निर्मल मिलन
11. गौरी शंकर मिश्र	:	पतिंवरा (काव्य नाटक)
12. चंद्र देव सिंह	:	(स.) पाँच जोड़ बाँसुरी
13. चाँदमल अग्रवाल	:	कैकेयी (महाकाव्य)
14. जगदीश कुमार	:	निर्वाण (खण्डकाव्य)
15. जगदीश जोशी	:	शैलरेखा
16. त्रिलोकीनाथ ब्रजवाल	:	इंदु एक बिंदु दो
17. दुर्गावती सिंह	:	कहीं खुला आकाश नहीं
18. नर्मदा प्रसाद खरे	:	मरण त्योहार के गायक
19. नर्मदा प्रसाद खरे	:	राष्ट्रपिता को गाते देखा
20. नरेंद्र शर्मा	:	प्यासा निर्झर
21. निरंकुश	:	खरी खोटी
22. निराला	:	साध्यकाकली
23. प्यारे सिंह परेश	:	जवड़ों की छाँह में
24. बच्चन	:	उभरते प्रतिमानों के रूप
25. बजरंग वर्मा	:	परछाँइयाँ की भीड़ में
26. भगीरथ मिश्र	:	(स.) रेवातट
27. भवानी प्रसाद मिश्र	:	अंधेरी कविताएँ
28. भवानी प्रसाद मिश्र	:	मृत्युञ्जयी
29. मदालसा नारायण	:	राष्ट्र उन्नत हो हमारा
30. मनवधिन लाल	:	भगवान राम (महाकाव्य)
31. मोहन सदरा	:	कीड़े
32. मृत्युञ्जय मिश्र करूणेश	:	मोती मानसर के
33. रघुवीर शरण मिश्र	:	भूमि के भगवान

34. रघुवीर शरण मिश्र : भूमि के भगवान
35. रघुवीर शरण मिश्र : विजय वरण (खण्डकाव्य)
36. रमेश चंद्र शास्त्री : देव पुरुष गाँधी (महाकाव्य)
37. रमेश रंजक : गीत विहग उतरा
38. राजेंद्र प्रसाद सिंह : उजली कसौटी
39. रामगोपाल शर्मा दिनेश : अहं मेरा गेय
40. राम निवास शर्मा मयंक : अभिव्यक्ति
41. रामदरश मिश्र : पक गई है धूप
42. राम लक्ष्मण शुक्ल मादक : बापू के मुख से
43. लक्ष्मी शंकर त्रिवेदी : यह धरती है बलिदान की
44. विनय : (स.) संदर्भ
45. विराज : हम हिंदू हैं
46. विलास बिहारी : नयी किरण नये चरण
47. विश्वेश्वर शर्मा : बिंब बिंब चाँदनी
48. श्यामनंदन किशोर : युगबोध
49. शंभु प्रसाद श्री वास्तव : (स.) एक सप्तक और
50. शांति भारद्वाज राकेश : परीक्षित (खण्डकाव्य)
51. शिव मंगल सिंह सुमन : प्रलयसृजन
52. सत्यपाल चुध : मोरकंठ
53. संपूर्णानंद : गगन-गुफा
54. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : गर्म हवाएँ
55. सागर : भीड़ में एक विवश चेहरा
56. सुमित्रानंदन पंत : गीत हंस
57. सुमित्रानंदन पंत : चित्रांगदा
58. सुमित्रानंदन पंत : पतझर एक भाव क्रांति
59. सुमित्रानंदन पंत : सयोजिता
60. स्वदेश भारती : इक्कीस सुबह और
61. हरि जोशी : पखुरियाँ
62 हरि दामोदर : लकीरें
63. हीरा लाल अग्रवाल : हीरा हर गीत

64.	हुल्लड़ मुरादावादी	:	ढोलवती एण्ड पोलवती

1970 में प्रकाशित कविता-संग्रह

क्र.	लेखक का नाम		काव्य-संग्रह का नाम
1.	अज्ञेय	:	क्योंकि मैं उसे जानता हूँ
2.	अज्ञेय	:	सागर मुद्रा
3.	अजित कुमार	:	ये फूल नहीं
4.	उमाकांत मालवीय	:	शिवाजी (खण्ड काव्य)
5.	काका हाथरसी	:	महामूर्ख सम्मेलन
6.	केदारनाथ अग्रवाल	:	आज का आईना
7.	केदारनाथ मिश्र प्रभात	:	प्रवीर (खण्ड काव्य)
8.	केदारनाथ मिश्र प्रभात	:	मुक्ति संग्राम (खण्ड काव्य)
9.	केदारनाथ मिश्र प्रभात	:	ब्रतबद्ध (खण्ड काव्य)
10.	कृष्ण मोहन	:	धूप मेरी कामना की
11.	कीर्ति नारायण मिश्र	:	शिखर पर साँस
12.	गुलाब	:	रूप की धूप
13.	चंद्रकांत भारद्वाज	:	चरण कमल
14.	चंद्रसेन विराट	:	ओ मेरे अनाम
15.	जगदीश चतुर्वेदी	:	इतिहास हन्ता
16.	जगदीश साधक	:	बापू की पंखुड़ियाँ
17.	जीवन प्रकाश जोशी	:	हम भी तुम्हारे हैं
18.	दिनकर	:	हारे को हरिनाम
19.	नंद किशोर झा	:	हृदय
20.	नरेंद्र शर्मा	:	सुवर्णा
21.	नी लाभ	:	अपने आपसे एक बहुत लम्बी बातचीत
22.	फिराक गोरखपुरी	:	गुले नगमा
23.	फिराक गोरखपुरी	:	बज्में जिंदगी रंगो शायरी
24.	वच्चन	:	भाषा अपनी भाव पराये

25. बलदेव वंशी	:	दर्शक दीर्घा से
26. ब्रजमोहन लाल शर्मा	:	भगवत सतसई
27. ब्रूजेंद्र भगत मधुकर	:	मधुवन
28. वेढग बनारसी	:	जमाना बदल गया
29. भगीरथ भांगव	:	हथेलियों में ब्रह्माड
30. भारत भूषण अग्रवाल	:	एक उठा हुआ हाथ
31. महादेवी वर्मा	:	गीत पर्व
32. मालीराम शर्मा	:	औवर्ज की रात
33. रमेश कौशिक	:	समीप और समीप
34. रमेश रंजक	:	किरण के पांव
35. राम जीवन शर्मा जीवन	:	छींटाकशी
36. राम निवास जाजू	:	प्यास बढ़ती ही गई।
37. राम निवास शर्मा	:	यमदूत का जंबाई मैं
38. रामेश्वर प्रसाद सिंह	:	पत्र एक राधा के नाम
39. रामेश्वर शुक्ल अंचल	:	अनुपूर्वा
40. विपिन कुमार बिहारी अग्रवाल	:	नंगे पैर
41. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	:	चीजों को देखकर
42. श्याम विमल	:	दीपक की भाषा
43. शांति सुमन	:	ओ प्रतीक्षित
44. शिशु रश्मि	:	नारों के अधे शहर में
45. सत्यपाल चुध	:	अंधेरी आकृतियों के पार
46. सरनाम सिंह शर्मा अरूण	:	कविता के आँसू
47. सरला भटनागर	:	सात देवरों की भाभी
48. स्वर्ण किरण	:	नचिकेता (खण्ड काव्य)
49. स्वर्ण किरण	:	भीष्म (खण्ड काव्य)
50. सुखवीर सिंह	:	(सं.) दिविक
51. सुधा गुप्त	:	अनचीन्हा परिवेश
52. सुरेंद्र माथुर	:	(स.) क्यों न इनको पंख दे दूँ
53. सोहनलाल द्विवेद्वी	:	गान्ध्यायन

23. समकालीन कविता में आस्थावादी चिंतन

नई कविता के ही समान उसके परवत्ती विकास को भी अबतक अधिकतर विघटन, संत्तास और अनास्था की कविता के रूप में देखा जाता रहा है, किंतु अनास्था किसी भी रचना का मूल स्वर नहीं हो सकती–उसके मूल में वस्तुत: वह पीड़ा छिपी रहती है जो आस्था की कामना से अनास्था के स्वर दिया करती है। समसामयिक हिंदी–कविता की इस आस्थावादी धारा को पहचानने–परखने की कोशिश अभी नहीं की गई है। अनास्था और विश्वास के नारों ने आस्था और प्रकाश के चेहरों को धूमिल बना दिया है। साधन को साध्य के रूप में देखे जाने का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ है कि आलाचकों की दृष्टि मूल से हटकर डाल और पात में उलझकर रह गई है किंतु यह स्थिति अब अधिक दिन चलने वाली नहीं है। नई कविता के चहरे का धुंध अब धीरे–धीरे छंटने लगा है–उसके खिलाफ पुराने खेमे के आलोचकों द्वारा जो ब्यहूबंदी की गई थी उसे इधर के कवियों ने काफी सीमा तक तोड़ा है। आज कविता का जो चेहरा उभर कर सामने आया है उसने न केवल दुरूहता और अति बौद्धिकता के आक्षेपों को ही निराकृत किया है वरन् कथ्य के पैनेपन और प्रेषणीयता के छोरों का स्पर्श भी किया है। आज की अधिकतर कविताएँ और काफी साठोत्तर कविताएँ भी काव्य के उसी कोण का स्पर्श करते हुए अभिधात्मक स्तर पर था व्यंजित रूप में मानव–मूल्यशें से गहरा लगाव व्यक्त करती हैं। विघटन उनमें उतना है नहीं जितना कि उसे उछाला गया है। कई बार तो यह भी हुआ कि व्यंजित अर्थ को न पकड़ पाने के कारण आलोचक अभिधार्थ से ही उलझते रहे हैं–परिणामत: काव्य की भीतरी आस्था सतही और ऊपरी अनास्था से भस्मावृत्त अंगार की तरह दबी रह गई, उसका मूल रूप उजागर ही नहीं हो पाया। सन् 60 के वाद की मुक्तक और प्रबंधात्मक कविताओं में तो आस्था की यह सघन अन्तवर्तिनी धारा ही है; पूर्व प्रकाशित प्रबंधात्मक काव्य–कृतियों या मुक्तक संकलनों में भी इस का नितांत अभाव नहीं है। डॉ० धर्मवीर भारती ने तो अंधायुग को भास्वर शब्दों में ज्योति की कथा कहा है–''यह कथा उन्हीं अंधों की है–

या कथा ज्योति की है और अंधों के माध्य से''

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि अंधों के माध्यम से ज्योति की कथा कहने का यह उपक्रम–अनास्था के माध्यम से आस्था की अभिव्यक्ति का यह प्रयास केवल भारती का ही नहीं, आज के अधिकांश कवियों का है। सभवतः इसी कारण 'संशय की एक रात', (नरेश मेहता) 'एक कंठ विषपायी' (दुष्यंत कुमार) और आत्मजयी) (कुंवरनारायण) जैसी नई कविता की प्रबंधात्मक उपलब्धियाँ अपनी संशयात्मक और प्रश्नाकुल प्रकृति के बावजूद आधुनिक–संवेदना–समन्वित आस्था से हीन नहीं है। अनेक रचनाओं में आस्था और विश्वास को यह सशक्त स्वर व्यंजित रूप में अभिव्यक्ति पा गया है।

आस्था का अर्थ यह नहीं कि कवि यर्थाथ से आँखें चुराए, वह अंधे को अंधा न कहे या अन्याय, शोषण, अनाचार, भ्रष्टाचार आदि का पर्दाफाश न करें। यह सब तो उसे निर्भीकतापूवर्क करना ही होगा–और यह निर्भीकता, आवेगप्राणता और आक्रोशभरी मुद्राए मानव मूल्यों से जुड़ी है। जो कवि मानव की सद्वृत्तियों से जितना गहरा जुड़ा होगा, बढ़ता भृष्टाचार उसे उतना ही खलेगा। उसकी टीस और वेदना उतनी ही बड़ी होगी।

समकालीन कवियों के मन में प्राचीन जर्जरित मूल्यों या वर्तमान व्यवस्था के प्रति निश्चय ही एक गहरा असंतोष है, किंतु क्या यह इसलिए नहीं कि उनकी दृष्टि किसी नई और बेहतर व्यवस्था से जुड़ी है? जीवन के किसी ऐसे रूप के प्रति उनके मन में आकर्षण है कि जो सहज सुलभ नहीं है, किंतु वे चाहते हैं कि वैसी जीवन–व्यवस्था हो और उसी जीवन–सरणी की कामना व्यंग्य और विद्रूपता के माध्यम से ही सही, समकालीन हिंदी कविता में की गई है। यही सातवे दशक भी नई हिंदी कविता का कथ्य भी है और इस बिंदु पर यह कविता आस्था के किसी–व–किसी कोण से जुड़ जाती है। वर्तमान जीवन और समाज की विसंगतियों का चित्रण कवियों ने किया अवश्य है पर उन का मन इस विसंगत दशा से प्रसन्न नहीं, क्षुब्ध है। उन की खीझ, क्षोभ और क्रोध तथा विरोध किस बात का प्रमाण है? इसी बात का कि इस के द्वारा वे वर्तमान सामाजिक, कुरीतियों, रूढ़ियों और दुष्ट व्यवस्थाओं के प्रति एक गहरा असतोंष व्यक्त करना चाहते हैं–वे चाहते है एक ऐसी नई व्यवस्था जिस में जाति, वर्ण या वर्ग नए आदमी के भाग्य के नियंता न हों। अवसरवादिता अनाचार, भ्रष्टाचार, भाई–भतीजा वाद आदि के स्थान पर मानवीय गुण किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा के नियामक हो। क्या यह किसी आस्था से जुड़ने की अकुलाहट नहीं है?

यदि कोई कहे कि आज समकालीन कवियों को देश की चिंता नहीं तो मैं इससे सहमत नहीं हूँ। देश की चिंता और आम आदमी की बिगड़ती हालत ही तो उसकी लेखनी को मजबूर करती है कुछ लिखने के लिए-सृजन के लिए। आम

आदमी और उसकी दुर्दशा निश्चय ही उनकी चिंता का विषय है–(यद्यपि यह सही है कि अनेक ऐसे कवि भी हैं कि जिन्हें अपनी व्यावहारिक ज़िंदगी में आम आदमियों से कुछ लेना-देना नहीं है, वे उनके विषय में की जाने वाली बहस में ही अपने कर्त्तव्य-कर्म की इति मानते हैं, उनकी सक्रिय सहायता में नही, किंतु वे भी आम आदमी पर ही लिखते हैं।) और वे चाहते है कि उनकी की दशा में सुधार। उनकी दयनीय दशा के यथार्थ व्यंग्यात्यात्मक चित्रण के माध्यम से आज का कवि क्या किसी जीवन-मूल्य से जुड़ा नहीं है? क्या जिजीविषा और श्रम में उसका विश्वास नहीं? मैं समझता हुँ कि पहले के कवियों में कही ज्यादा है इसी प्रकार सामाजिक न्याय की कामना उनमें पहले के कवियों से किसी प्रकार कम नहीं। जब धूमिल कहते हैं–

क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है जिन्हें एक पहिया ढोता है। या इस कोई खास मतलब होता है?

तो महज अनास्था के लिए नहीं कहते। इन पंक्तियों के माध्यम से देश-भक्ति, आम आदमी की दुर्दशा के प्रति कवि की वास्तविक अकुलाहट और सामाजिक न्याय-प्राप्ति की कामना तल्खी और खीझ भरे शब्दों में, व्यंग्यात्मक रूप में व्यक्त हुई है। कवि के सामने निश्चय ही एक जीवन-दर्शन है, स्वतत्रंता-प्राप्ति के बीस साल बाद भी उसे प्रतिफलित होते न देखकर वह परेशान हो उठा है, किंतु इसे अनास्था का स्वर तो नहीं माना जा सकता–जीवन के प्रति, किसी जीवन-दर्शन के प्रति कवि की गहरी आस्था है जो किसी बहतर व्यवस्था के माध्यम से व्यक्त हुई है।

❑❑❑

24. डॉ० रामविलास शर्मा का सौंदर्य चिंतन

सौंदर्य की अनुभूति आज के सामूहिक विकास दर अवलंबित है। इसलिए "संगीत का उस व्यक्ति के लिए कोई मूल्य नहीं है जिसकी ध्वन्यनुभूति विकसित नहीं हो पाई है:....। सामाजिक मानव की रसेद्रियाँ, असामाजिक मानव को रसेद्रियाँ, असामाजिक मानव की अपेक्षा अधि विकसित होती हैं और समाज का विकास अवलंबित है भौतिक समृद्धि पर। जो आदमी भूखा मर रहा है उसके लिए सौंदर्य का क्या मूल्य।

यर्थाथ जीवन में, मार्क्स की इस धारणा को पूर्णत: प्रमाणित होती नहीं देखा जाता। गाँव के दैन्य-जर्जर किसानों से लेकर शहर के सर्वाहारा पथवासियों तक सौंदर्य के आस्वादन के संबंध में एक सामान्य प्रवृत्ति देखी जा सकती है। होली, दीवाली का बहाना निकालकर रस-रंग में ग्रामीण मस्त होते ही रहते हैं और हर शहर में, अच्छे सिनेमा के लिए, धनी से लेकर मध्य वित्त-वर्ग तक के सदस्यों को, इस सर्वहारा वर्ग से निरंतर होड़ लगानी पड़ती है, जिस में विजय अक्सर हमारे पथवासियों की ही होती है।

शोषित वर्ग सौंदर्य का सृजन भले ही न कर सके, उस के आस्वादन में वह किसी से पीछे नहीं है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने काव्य, कला और साहित्य का प्रेरणा स्रोत, मानव का सौंदर्य-बोध और उसकी अभिव्यक्ति ही उसकी अदम्य इच्छा को माना है। सौंदर्य-बोध को उन्होंने एक ऐसी ईकाई माना है, जिसके दो आयाम हैं-वस्तु और मानव मन?"

सौंदर्यबोध एक संशिलष्ट इकाई है। सौंदर्य प्रकृति में है, मनुष्य के मन में भी। सौंदर्य-बोध वस्तुगत सौंदर्य की सता तो समाज निरपेक्ष है ही, 'मनुष्य का सौंदर्य-बोध' भी अपने मूल रूप में सामाजिक विकास की देन नहीं है; सामाजिक विकास उसे जन्म नहीं देता, केवल उसका परिष्कार और विकार करता है; जैसा कि डॉ. शर्मा का मत है, मनुष्य का इद्रिंय-बोध और उस के भावों का ''उद्गम मनुष्य के सामाजिक जीवन से भी पहले (का) है। स्वर और रंगों के प्रति आकर्षण तथा, प्रेम, घृणा आदि

के भाव-पशु-पक्षियों में भी मिलते हैं। सामाजिक विकास-क्रम में इद्रिंय-बोध और भाव परिष्कृत और समृद्ध होते जाते हैं।"

जहाँ तक साहित्य के माध्यम से सौंदर्य की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, डा. शर्मा इद्रिंय बोध तथा भावों के साथ ही 'विचार' का समन्वय आवश्यक मानते हैं।

निष्कर्षत डॉ. शर्मा मानव के सौंदर्यबोध को कला की मूल प्रेरणा मानते है और साहित्य के माध्यम से उस की अभिव्यक्ति को वर्ग-सापेक्ष्य। हाँ साहित्येतर माध्यमों द्वारा (जैसे चित्र, संगीत, हस्तकला इत्यादि) सौंदर्य का अभिव्यक्ति को शर्मा अनिवार्यत: वर्ग सापेक्ष्य नहीं मानते।

निष्कर्षत: पूँजीवादी शोषण का विरोध और वर्गहीन समाजिक व्यवस्था की स्थापना में सहयोग, आज के साहित्यकार का, डॉ० शर्मा के अनुसार, सबसे बड़ा कर्त्तव्य है।

काव्य संबंधी कतिपय प्रश्न

1. रसवाद की नई व्याख्या–भारतीय पारंपरिक मान्यता रस को काव्य की आत्मा मानती है। डा० शर्मा एक सीमा तक रसवादी है, किंतु रस को प्रमुखतम स्थान देने को प्रस्तुत नहीं। वे रसजन्य आनंद को काव्य का आरंभ बिंदु अवश्य मानते है।

डॉ. शर्मा की रस संबंधी मान्यता वस्तुत: आचार्य शुक्ल के सिद्धांतों से अनुप्रेरित है। लोक मंगल की भावना से समन्वित रसवाद ही उन्हें ग्राह्य है। वे शुक्ल जी के इस उद्धरण को अपने मत के समर्थन में प्रस्तुत भी करते हैं–

सच्चा कवि वही है जिसे लोक हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इसी लोग हृदय में हृदय के लीन होने के की दशा का नाम रस-दशा है।"

सामाजिक कर्त्तव्य बोध या लोकमंगल से हीन रस या आनन्दवाद डॉ० शर्मा को कतेई। स्वीकार्य वहीं है। दुखांत काव्य या नाटक से हमारे मन में दुख: की अनूभूति होती है।

समाजवादी सौंदर्य बोध–इस से ही संबंधित एक प्रश्न सौंदर्य का भी है। दो प्रमुख दृष्टियाँ इस प्रश्न को लेकर विकसित हुई है। प्रथम के अनुसार सौंदर्य की सत्ता आत्मगत है, और दूसरी के अनुसार वस्तुगत।

पहली श्रेणी की विचारधारा के अनुसार मनुष्य उस वस्तु को सुंदर कहता है जिन के योग्य वह अपने स्वभाव और पूर्वानुभव से बना हुआ है। कैरिट के अनुसार–"सौंदर्य गोचर वस्तुओं से नहीं होता, वरन उनके महत्त्व पर निर्भर होता है और भिन्न-भिन्न पुरुषों के लिए उनका महत्त्व भी भिन्न होता है। समस्त प्रत्ययवादी

विचारकों के तर्क इसी स्थापना के अनुरूप होते है। उनके लिए सौंदर्य की सत्ता वस्तुगत न होकर आत्मगत होती है।"

दूसरी श्रेणी के विचारकों का मंतव्य काउवेल की इस स्थापना में व्यंजित है–"सुंदर वस्तु तभी सुंदर है, जब वह व्यक्ति मानव के नहीं समूह–मानव की भावना को आन्दोलित करती है।"

डॉ० शर्मा स्पष्ट रूप से काडवेल की भांति सौंदर्य को वस्तुगत समूह-मानव सापेक्ष मानते हैं–"मनुष्य के इंद्रियबोध का संसार बहुत विशाल है। उसमे एक से अधिक वर्गों और देशों के लोग भाग लेते हैं।......रूप, रस, गंध, स्पर्श, आदि की अनुभूति में मनुष्य एक–दूसरे से उतने पृथक नहीं है जितने भावों और विचारों के संसार में। यह सौंदर्य–बोध एक बाह्य प्रत्यक्ष जगत का अनुभव है; इंद्रियाँ उस की सृष्टि नहीं करती इसलिए इन्द्रियों से से जिस सौंदर्य की अनुभूति होती है, बाह्य जगत में उसकी वस्तुगत सत्ता है। इंद्रियाँ सौंदर्य की परख का साधन (मात्र) है; उसका कारण नहीं है।"

सौंदर्य की वस्तुगत सत्ता की स्थापना के बाद, डा. शर्मा उसे सामाजिक उपयोगिता के साथ भी आबद्ध करते हैं। काव्य में मरणशील और जीवंत दोनों तत्वों के सौंदर्य की अभिव्यक्ति की जा सकती है किंतु उनके ट्रीटमेंट' में अंतर होगा। मरणशील तत्वों का सौंदर्य उनके हवस के द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है, तो जीवंत तत्वों का सौंदर्य अज्ञान, अन्याय और शोषण को समाप्त कर एक उज्जवल मानव नियति का निर्माण करने में। डॉ० शर्मा के शब्दों में"

"समाज के भीतर जो जीर्ण और मरणशील तत्त्व हैं, जो जीवंत और उदीयमान तत्व हैं, इन से बाहर सौंदर्य की सता नहीं है। जो जीर्ण और मरणशील हैं, उनके लिए सुंदरता मृत्यु में है। अन्याय और अत्याचार के फरेब सो ढकने में है, भविष्य से त्रस्त होने और क्षण में ही जीवन की सीधें पूरी करने में है। जो जिवित और उदीयमान है, उनके लिए सुंदरता सत्य में है, मृत्यु को जीतने में है, अज्ञान, अत्याचार, अत्याचार और अन्याय की दुनिया को दफनाने में है, सुख और शांति के उज्जवल भविष्य को ओर बढ़ने में है। साहित्य उस मंजिल तक पहुँचने का शक्तिशाली साधन है।"

इस प्रकार डॉ० शर्मा की सौंदर्य, भावना, काव्य की सामाजिक उपयोगिता के आधार पर अवस्थित है। निरपेक्ष सौंदर्यवाद के न तो वे समर्थक हैं और न ही उसकी वस्तुगतता के अलावा और कोई हस्ती स्वीकार करते हैं।

❑❑❑

25. काव्य का कलात्मक सौंदर्य

कलागत सौंदर्य मनोजगत का सौंदर्य है जिसकी सामग्री बाह्य जगत मानव जगत तथा प्रकृति जगत) से प्राप्त होती है। बाह्य जगत की सामग्री जब अंतकरण (बुद्धि, भावना, कल्पना, अनुभूति आदि का केंद्र) में जाकर, और वहाँ की विशिष्ट प्रक्रियाओं में से निकल कर बाहरी जगत में चित्र, संगीत, काव्य आदि रूपों में पुनः लौट कर आती है तब वह कलागत सौंदर्य से संपन्न कही जाती है। इस प्रकार कला अपनी मूल सामग्री से पर्याप्त परिवर्तित रूप में आकर उपस्थित होती है। उस परिवर्तन में ही वह सौंदर्य उत्पन्न होता है जिसकी सृष्टि, उच्च, कोटि के आनंद के लिए, कलाएँ करती हैं।

आकर्षण और रमणीयता सौंदर्य के मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण उपादान है। आकर्षण होता है सुंदर वस्तु के बाहरी रूप के प्रति, और रमणीयता का अनुभव होता है उस वस्तु ही भीतरी भावना के तल के पैठने पर। प्रकृति सौंदर्य और वस्तु सौंदर्य में ये दोनां की उपदान उपस्थित रहते हैं या रह सकते है। अन्य सौंदर्य की ही तरह कला या काव्य का भी सौंदर्य होता है। स्थापत्य, मूर्ति, चित्र आदि से संबंधित कलाएँ मुख्यतः नेत्रों का ही विषय होती है, उनमें उक्त दोनों उपादान होते है, किंतु संगीत तथा काव्य चाक्षुष माध्यम से नहीं किंतु श्रवण व भाव से ही आस्वाद्य होते हैं। अतः वे कलाओं में अपेक्षाकृत सूक्ष्म माने गए हैं। काव्य का साधन या माध्यम शब्द-प्रतीक मात्र होने से वह सब ललित कलाओं में सबसे अधिक सूक्ष्म व श्रेष्ठ माना जाता है। डॉ सम्पूर्णानन्द जैसे विद्वान संगीत को ही सर्वोच्च कला मानने के पक्षपाती जान पड़ते हैं।

काव्यगत सौंदर्य अन्य पदार्थों की तरह बाह्य चर्म-चक्षुओं से तो दिखाई नहीं पड़ता, किंतु उसकी मानसिक अनुभूति ही संभव है। शब्दों में जो चित्र या बिंब होते हैं, वे पाठक या श्रोता के भावनापटल दर प्रतिबिंबित होकर उसको भाव मग्न करने की क्षमता रखते हैं। काव्य की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है कि जो वस्तु-व्यापार प्रत्यक्ष जगत में हमें प्रायः प्रभावित या द्रवित नहीं करते वे उसमें (काव्य में) चित्रित या वर्णित होकर हमें तुरंत रसमग्न कर देते हैं या कर सकते हैं।

कला का यह स्वर्ण-स्पर्श समस्त स्थूल, रूप-हीन व उपेक्षित को भी सूक्ष्म,

सरस व रमणीय बना देता है। कारण क्या है? कारण यह है कि काव्य तथ्य या सिद्धांतों का परिगणन या निर्देश मात्र नहीं करता अपितु पाठक के हृदय पर प्रभाव डालने के लिए अपनी चित्र-विधायिनी कल्पना के बल से ऐसे ढंग से चित्र अंकित करता है कि पाठक भी सक्रिय होकर अथवा ग्राहक कल्पना केवल से, भावना पटल पर अंकित उन मूर्तियों या प्रतिबिंबों को दृढ़ता के साथ ग्रहण कर उनमें तन्मय हो जाता है। दूसरी बात यह है कि कवि यदि चित्र के कुछ ब्यौरे छोड़ देता है तो पाठक अपनी कल्पना से उनको पूरा कर लेता है।

काव्य में जो बिंब विधान होता है उसका वास्तविक आधार बाहरी जगत के रूप-व्यापर ही हैं। इन्हीं रूप व्यापारों का जन काव्य में वर्णन किया जाता है और उन वर्णनों को पढ़ने पर उनकी मानस-मूर्तियाँ हृदय में अंकित होती है, तब उनका सौंदर्य, अनेक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक मसालों के मिश्रण से, प्रत्यक्ष जगत के पदार्थों के सौंदर्य से कई गुना बढ़ जाता है। यही उन रूप-व्यापारों का कलागत सौंदर्य कहलाता है। बाहरी जगत के जो पदार्थ हमें साधारणतः आक्रष्ट नहीं करते, वे ही कवि कल्पना के माध्यम से जन हमारे भावना-पटल पर पहुचते हैं तो उनमें एक विचित्र मोहिनी उत्पन्न हो जाती है। यही मोहिनी उस कलागत-सौंदर्य का प्राण है। इस सूक्ष्म व मानसिक सौंदर्यानुभूति को ही हमारे यहाँ 'रस' (Aesthetic Experience) की संज्ञा प्रदान की गई है। यह कलागत-सौंदर्य भारतीय साहित्य शास्त्र के सभी संप्रदायों में समान भाव से स्वीकृत है। रसवादी इसे काव्य की आत्मा ही मानते हैं। अलंकारवादी इस सूक्ष्म सौंदर्य को केवल अलंकार ही मानते हैं। गुण या रीति संप्रदाय के आचार्य उस सौंदर्य की सत्ता काव्यगुणों या रीतियों में मानते हैं।

अभिप्राय यह है कि सौंदर्य की इस सूक्ष्म सत्ता का अस्तित्व तो सभी आचार्य एक स्वर से स्वीकार करते हैं, किंतु उसे एक ही काव्य-धर्म में न मानकर विभिन्न काव्य धर्मों में मानते हैं।

यद्यपि कलागत सौंदर्य विभिन्न रूपों (ध्वनि, अलंकार गुण आदि) में माना गया है किंतु रस हो उन सब का प्राणतत्व है। उधर पश्चिम में 'अभिव्यंजनावाद' में कल्पना' जो काव्य का सर्वस्व न होकर वस्तुतः एक उपादान मात्र है, में ही काव्य कला का सारा सौंदर्य केंद्रित कर गया है। किंतु भारतीय पंडित तो अनुभूति को ही निभ्रन्ति रूप से प्रथम स्थान देते हैं और कल्पना को द्वितीय। कलागत सौंदर्य को केवल कल्पना के आनंद तक ही सीमित रखना वास्तव में अधूरा सौंदर्य-दर्शन है।

❑❑❑

26. 'अर्द्धशती' का सौंदर्यात्मक मूल्यांकन

अर्द्धशती "बाल कृष्ण राव" की पचास नई कविताओं का संग्रह है। श्री राव एक अरसे से कविता लिखते रहे हैं और नई कविता के रूप में अपनी काव्य धारा को प्रत्यावर्तित करने के परिपार्श्य में उनकी कोई आन्योंनात्मक भावना कार्य करती रही हो, उसकी बात नहीं है। आधुनिक जीवन के विषम वातावरण एवं युगकल्प के संतरण की आहट पहचान कर ही उन्होंने परंपरित कविता की लोक पर ही आगे बढ़कर नई कविता के मूल्यों, प्रतीकों एव अभिरूचि के विविध आयामों का स्वागत किया है। फलतः राव की 'अर्द्धशती' की कविताओं में परंपरागत काव्य की कमनीदता का आवेष्ति द्रव्य उतना ही है, उतना नई कविता की नव्यतम उपलब्धि जो सहज रूप में इन कविताओं में बिना किसी प्रयत्न के आ गई हैं। 'अर्द्धशती' का कवि एवं उसको कविता का मूल्याकिन किसी विशिष्ट भंगिमा से नहीं, कविता की सहजता भाव भूमि पर अपेक्षित है जो सदा से काव्य का आधार रहा है। नई कविता मे दुरूहता कलिष्ट प्रेषण को प्रतीकात्मकता तथा चिंतन एवं विचार के नाम पर आपाच्य अधीत द्रव्यों का जो अनमेल ताना बुना जाता रहा है उन सारे दोषों का निराकरण प्रस्तुत संग्रह का कविताएँ करती दिखाई पड़ती है। अभिधात्मक काव्य रचना के माध्यम से, छोटे खंड चित्रों एवं सहजता को उपस्थित करते हुए जीवन के विराट फलक को कवि बड़ी आसानी से रख सका है। यही उसकी अत्यतम सफलता है।

'अर्द्धशती' की कविताओं का सौंदर्य उस के शब्दावरण एवं वाक्य-विदग्धता की अपरंपरित रचनात्मक प्रणाली में नहीं है वरन् 'अर्द्धशती' की कविताओं में एक सहजात्मक विच्छिति मिलती है, जो विश्व के श्रेष्ठतम काव्यों के लिए महत्त्वपूर्ण माना गया है। इन कविताओं को पढ़ा जाएगा, लेकिन उससे भी ज्यादा इसका महत्त्व इस अर्थ से है कि यदि इन्हें अनुभव किया जाता तो इसके विविध आयामों का अर्थ अधिक खुलकर समझ में आ सकता है। 'कौन जाने' कुछ तो कहोगे, 'प्रश्न और उतर' पदचिह्न, 'पाषण-कारा', 'चाँदनी में, 'धुरी हो या चक्रनेमि' इत्यादि कविताएँ मंतव्य को अधिक स्पष्ट करने में समर्थ होगी।

जीवन के युगबोध और आधुनिक परिवेश के संतुलन की आवाज को अर्थवती बनाकर उपस्थित करने में अर्द्धशती की कविताओं का विशेष महत्त्व है। 'पाषाण कारा में कवि कहता है–

उठो शिल्पी, उठो सुन लो
तुम्हें पाषण-कारा से
व जाने आज
कितनी मूर्तिया आवाज देती हैं"

नई कविता के संबंध में कुछ लोगों का आक्षेप है, इसमें जीवन का संतुलन एवं असंगतिओं को ही वाणी मिली हे। आस्था एवं ओज का अभाव है। परंतु नयी कविता में आस्थामूलक प्रवृत्ति इधर पिछले दशक की कविताओं में तीव्रता के साथ उभरी है जिनमें श्री राव की देन विशेष महत्त्वपूर्ण है।

इस संग्रह की अधिकांश कविताओं में पौरूष की चिन्ता एवं आस्था का अविश्वास चिन्तन है जो बड़े ही प्रखर रूप में स्पष्ट हो सका है। 'मील देवी', 'प्रयोगशाला', 'पात्रता', 'सावधान', 'जननायक', ओधी, में इसका दर्शन विशेष रूप में होता है। आधुनिक जीवन की इस विविधा के बीच भी 'अर्द्धशती' की कविताओं के कवि को एक सहज पथ मिल गया है यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

श्री राव की उन कविताओं को पढ़ते समय नई कविता के काव्य रूप की कल्पना सहज ही जाग उठती है और मन को यह विश्वास होता सा दिखाई देता है कि अब जो नई कविता की भविष्य में रचना आयेगी उसका शिल्प, यही होगा जो 'अर्द्धशती' की कविताओं में संकेतिक हो रहा है। बोद्धिक विचारणा एवं चिंतनात्मकता की रक्षा करते हुए भी सहज रूप में कुछ कहा जा सकता है जो कविता ही है, उसका उदाहरण 'अर्द्धशती' में मिलता है। नई कविता के समूहों के बीच 'अर्द्धशती' अपरंपरित ही मानी जाएगी लेकिन इस अर्थ में कि उसने अभिव्यक्ति का एक नया माध्यम दिया है जो अपरिचित-सा होकर भी दूसरों के लिए अनुकरणीय चुनौती है।

□□□

27. सौंदर्यानुभूति एवं व्यवस्था: एक विश्लेषण

नई सौंदर्य दृष्टि हमें तब मिलती है जब हम वस्तु में व्याप्त तत्त्वों के क्रम को नए परिप्रेक्ष्य के माध्यम से पुन: व्यवस्थित करते हैं यह पुनर्व्यवस्था किसी बाह्योपित तथ्य से नहीं, स्वत: परिप्रेक्ष्य अंतर से व्याप्त तत्वों का संयोजन है। किसी भी वस्तु को नए सिरे से अनुभव करने के लिए या उसे नए अर्थ-संदर्भों से संयुक्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उनके आंतरिक गठन को स्वत: अनुशासित नियमों से जाना जाए और उसकी प्रकृति को सार्थक समझा जाए। भाव अतिरंजना में या उसकी कोरी भावुकता में इस अर्थ का लोप हो जाता है, क्योंकि उसमें वह तटस्थता नहीं रहती जो कि कला-बोध के लिए परमावश्यक वस्तु है। अमिय सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच में जिस वस्तु की माँग की गई है वह उनकी प्रकृति की है। बिना इस तटस्थ दृष्टि या उनकी प्रकृति के ज्ञान के न तो कोई अमृत का ही अनुभव कर सकता है और न विष का ही अनुभव कर सकता है। यहाँ पर भी वस्तु की आंतरिक गठन और इस रचना-प्रकृति पर बल दिया गया है।

सौंदर्य अपने आंतरिक गठन में जिस सामंजस्य का बोध कराता है वह व्यवस्था का संतुलन ही कहा जा सकता है। कभी-कभी सौंदर्य व्यवस्था-हीनता तथा सामंजस्य और आंतरिक गठन के अभाव से भी व्यक्त होता है। यह कहना कि सौंदर्यानुभूति के लिए व्यवस्था का कोई विशिष्ट प्रारूप आवश्यक ही है, गलत है। व्यवस्था कभी-कभी सामंजस्य से पृथक होकर भी सुंदर लगती है। मात्र संतुलन की अजीर्णता से भी अरूचि होना स्वाभाविक है। कहीं-कहीं इस संतुलन का अभाव भी वस्तु को अधिक सुंदर बना देता है। असामजस्य का भी एक प्रारूप हो सकता है। इसलिए सामजस्य और संतुलन के साथ-साथ असामजस्य के महत्त्व को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। अव्यवस्था और असामजस्य में मूल अंतर यही है। असामजस्य होते हुए भी कोई वस्तु व्यवस्थित हो सकती है, किंतु हर व्यवस्थित चीज़ में सामंजस्य ही मुख्य वस्तु है ऐसा नहीं कहा जा सकता।

यही कारण है कि सौंदर्य के साथ कोई रूढ़ि नहीं काम कर सकती और

व्यवस्था का कोई निशिचित 'फ्रेम' नहीं हो सकता। प्रत्येक वस्तु अपने तत्वों के अनुसार व्यवस्थित होती है और प्रत्येक नियोजन अपनी प्रकृति के अनुसार ही प्रक्रिया में ढलता है सौंदर्यानुभूति एक स्थिति वह भी होती है जब वह मात्र थोड़े से परिवर्तन से अथवा इधर या उधर का संतुलन हटा देने से अधिक सार्थक हो जाता है। चित्रकला में जहाँ एक ओर 'मॉडल' की अनुरूपता हमें मिलती है वही दूसरी ओर मात्र स्थापत्य की दृष्टि से वस्तुकला भी अच्छी लगती है किंतु आज के संदर्भ में शायद यह दोनों ही उतने मूल्यवान नहीं रह गए हैं, आज हमारी दृष्टि अनुरूपता पर न जाकर उसकी सूक्ष्मता पर बल देती है। यह सूक्ष्मता मात्र आकृति की विविधता के नाते अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। आज की दृष्टि, इसलिए तत्व गठन की आंतरिक नियोजन प्रवृत्ति पर अधिक है साकार के बाह्य उपकरणों पर कम पेड़ से अधिक पेड़पन, आदमी से अधिक आदमीपन के प्रति हमारी दृष्टि जागरूक है और सौंदर्य के विभिन्न तत्वों को सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करती है।

विज्ञान ने नए-नए प्रयोगों ने सौंदर्य के तत्वों में परिवर्तन ला दिया है। शायद चमत्कार और सहसा विस्मित या हतप्रभ अथवा किकर्तव्य विमूढ़-जैसी स्थितियाँ सौंदर्य से सम्बद्ध नहीं है। सौंदर्य के साथ आज जिस तत्व का महत्व है वह है संतुलन, सामंजस्य और व्यवस्था। यह नहीं कि प्राचीन सौंदर्य-बोध में ये तत्व नहीं थे, वरन इसका आशय यह है इसके साथ-साथ चमत्कार और किंकर्तव्य-विमूढ़ता के स्थान पर विवेक और अनुभूति का महत्व बढ़ गया है। इंद्रधनुष आज भी हमें अच्छा लगता है और प्राचीन काल में भी अच्छा लगता है। किंतु आज हम जब इंद्रधनुष को देखते हैं तो शायद उसके सौंदर्य के कारणों को भी जानते है और प्राचीन काल में हम केवल उत्सुकता जिज्ञासा और कौतूहल के वशीभूत होकर ही सारा अनुभव झेलते थे।

सौंदर्य का संबंध सदैव एक आंतरिक अभाव की पूर्ति में व्यक्त होता रहा है। किसी भी सुंदर वस्तु को देखकर हम सदैव ऐसा अनुभव करते रहे हैं कि जैसे उस अनुभूति ने हमारे व्यक्ति में कुछ जोड़ा है। कहीं कुछ ऐसा है जो हम में इतना कम और इतना क्षीण रहा है जो अभी तक उसके बिना अपूर्ण था। सौंदर्य की सबसे बड़ी उपलब्धि इसीलिए पूरक के रूप में व्यक्त होती है। प्रत्येक सुंदर वस्तु और उसका सौंदर्यात्मक बोध हमारे अनुभवों की कड़ी में एक और अनुभव जोड़ता है और यह ऐसे अनुभव है जो मात्र अनुभव के स्तर पर ही नहीं, सार्थकता के स्तर पर भी हमें संपन्न बनाते हैं। ताजमहल और परामिड सुंदर हैं और उनकी सुंदरता उनके अपने रचना-विधान में निहित है, किंतु उनका बोध और उन का संपूर्ण-व्यक्तित्व हमारी मानसिक स्थितियों पर भी प्रभाव डालता है और हमारे मानसपटल पर उन की छाप

एक बोध के रूप में पड़ती है। इस प्रकार उनका अस्तित्व हमारी चेतना के आयामों की नई परतों से जोड़ देता है, उसका सहबोध करा देता है। कभी-कभी मात्र इस बोध से कि हमारे आस-पास या हमारे चारों ओर एक सौंदर्य-सृष्टि है हमें अपने अर्थ को सर्वथा नया आयाम मिल जाता है हम केवल अपने नहीं रह जाते वरन अपने परिवेश के अंश और उसके सह-संभोगी भी हो जाते हैं। लेकिन यह सह-बोध, सह-संयोग और सह-भोग की स्थितियाँ बिना बौद्धिक ज्ञान और मानसिक अभिरूचि के संभव नहीं हो सकती है। जब किसी भी वस्तु की व्यवस्था की अनुभूति हमें होती है तो उस आयाम का साक्षात्कार जिस में मात्र 'पैटर्न' की पुनरावृति या संतुलन की रूढ़िग्रस्त धारणा के अतिरिक्त एक नए रचना-क्रम और एक सर्वथा नए रचना-विधान का साक्षात्कार होता है। उस रचना-क्रम का बोध या उस रचना-विधान का बोध अपने अद्वितीय रूप में हमें सह-बोध की सार्थकता, सह-संभोग की क्षमता और सह-भोग की वास्तविकता को हमारे समकक्ष बना देती है।

सौंदर्य को सापेक्ष सत्य मान लेने के बाद हम जिस यर्थाथ का अनुभव करते हैं वह स्वतः मानवीय यथार्थ होता है जब उसमें व्यापक जीवन के तत्वों का भी दिग्दर्शन हो सके। सौंदर्य में इसलिए प्रेक्षक, प्रेरक, और प्रेषक शक्तियाँ भी होती है। किसी भी वस्तु के प्रेक्षक स्तर पर जने परिचात्मक बोध हमें होता है। वह एक प्रकार की परिज्ञान की स्थिति होती है। प्रेरेक-शक्ति सौंदर्य की अपनी क्रियाशीलता की प्रतिक्रिया है और प्रेषक तत्व ही हमें सार्थकता का बोध करा के सह-संभोग ओर सह-भोग के तत्वों को हमेसे संबंध करता है। सौंदर्य यहीं गुण उसे मानवीय बनाते हैं।

सौंदर्यानूभूति के विषय में जो बात विशेष रूप से जानने की है वह यह कि यह एक सक्रिय भोग की स्थिति है। अलौकिकि रूप से या किसी चमत्कारिक रूप से न तो हम सौंदर्य का अनुभव ही कर सकते हैं और न उससे किसी प्रकार की उपलब्धि ही प्राप्त कर सकते हैं। सौंदर्य का अनुभव वही कर सकता है जो उससे तादात्म्य कर सके, उसके साक्षात्कार के क्षणों में, उसकी रचना-प्रक्रिया में उसके संभोग की स्थिति में सक्रिय रूप से अपनी चेतना की समग्रता के साथ उसे भोग सके। जीवन की सार्थकता भी सौंदर्य की उपलब्धि में ही है। वह जो सौंदर्य की उपासना करता है अथवा वह जो सौंदर्य को केवल ईश्वर-प्रदत्त या अलौकिक चमत्कार मानता है न तो सौंदर्य के महत्व को समझ सकता हे और न उससे कोई उपलब्धि ही प्राप्त कर सकता है।

भोग की बात से प्रायः लोग समझते हैं कि यह निम्न स्तर की केवल दैहिक भोग की स्थिति है। वस्तुतः भोग की प्रक्रिया ही उपलब्धि की प्रक्रिया है। भोग से

जितना स्थूल तत्व का बोध होता है उतना ही वह सूक्ष्म स्तर पर भी सार्थक होता है। मानसिक स्तर पर विचारों का कुड़मुड़ाहट में भी उतनी ही स्थूलता है जितनी कि एक काँटे के चुभने में और यह भोग भी उतना ही सत्य है। जितना नितांत शारीरिक ऐसा इसलिए भी है कि नितांत दैहिक सुख-दु:ख भी बिना मानसिक योग के संभव नहीं है। भोग की स्थिति में सूक्ष्म और स्थूल, दैहिक और मानसिक में केवल प्रकृति में अंतर शक्ति समान होती है और दोनों की प्रभाव-प्रक्रिया भी समान होती है। इसीलिए सुदंर और असुंदर, उदात और कृत्रिम, दोनों का अर्थ-बोध भोग से सम्बद्ध है। सौंदर्य की उपलब्धि इसीलिए पूर्ण भोग की उपलब्धि है।

❑❑❑

28. प्रयोगवादी कवियों का सौंदर्य बोध

प्रगतिवाद के बाद विकसित प्रयोगवाद और नई कविता कला के क्षेत्र में आधुनिकता की पूर्ण और समग्र प्रतिष्ठा के प्रयत्न हैं। नई चेतना और उसके अनुरूप नवीन रूपात्मक प्रयोग उनकी विशेषताएँ हैं। उनके नए भावबोध और सौंदर्य-बोध के, व्यापक भारतीय जीवन से उद्‌बुद्ध न होकर पाश्चात्य जीवन और साहित्य से परिचालित होने के कारण संप्रेक्षषण की कठिनाई हो रही है और कवि समीक्षक होकर अपनी रचना के आस्वादन के लिए आवश्यक अभिरूचि निर्माण में संलग्न है। इस तरह छायावादी रूचि-परिष्कार और रूचि-निर्माण का इतिहास पुनरावृत हो रहा है। जहाँ सौंदर्य-भावना परंपरा से बिल्कुल कट कर सर्वथा नवीन रूप धारण करती है।

प्रयोगवाद और नई कविता में दृष्टिकोण का अंतर अवश्य मिलता है। या यूँ कहा सकता है कि यह दोनों भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं। प्रयोगवादी कवि आधुनिक युग के नए सत्य के अन्वेषण में ही लगे रहे, जबकि नई कविता आर्थिक विषमता, युद्ध की विभीषिका, विज्ञान-मनोविज्ञान के द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन और औद्योगीकरण के परिपार्श्व में एक नव मानवतावाद की प्रतिष्ठा करना चाहती है। जो व्यक्तिवादी विश्रृंखलता और समाजवादी नियंत्रण के बीच मनुष्य के अस्तित्व, व्यक्तित्व, चेतना, स्वतंत्रता और मानवता का समर्थक है। लेकिन दोनों प्रवृत्तियों में अनास्था और निराशा का स्वर भी उभर रहा है। इस मानसिक स्थिति में इन प्रवृत्तियो की सौंदर्य-भावना यथाथोन्मुख तो है, पर अनेक अवसरों पर संवेद्य सौंदर्य शास्त्रीय रूप-विद्यान से दूर, कुरूप और बीभत्स का व्यंजन हो गई है।

प्रयोगशील कवियों का सौंदर्य बोध व्यापक अवश्य है। इसलिए उन्होंने ने मसृण, मधुर एव कोमल वस्तुओं के साथ ही अनगढ़, भदेस, अश्लील, सुंदर एवं असुंदर को सहर्ष स्वीकार किया है, परंतु वे गहराई नहीं आ पाई जो नई कविता के कवियों में हैं। प्रयोग धर्मी कवियों ने प्रकृति के उदात तत्वों के साथ-साथ उपेक्षित लघुवस्तुओं, जैसे 'कंकरीट के पोच', 'चुड़ी का टुकड़ा', 'चाय की प्याली', 'सायरन',

इत्यादि को भी काव्य में स्थान दिया है। प्रयोग धर्मी कवियों ने कुछ शो‍ और प्रतिक्रियास्वरूप उपेक्षित वस्तुओं की ओर ध्यान केंद्रित किया है। प्रयोगवाद ने मानव जगत के लघुजीवों की और उतना ध्यान नहीं दिया जितना प्रकृति और यंत्र-जगत की लघु वस्तुओं की ओर। वास्तविकता यह है कि प्रयोगवादी कवियों ने मानव की ओर विशेष झुकाव प्रकट नहीं किया।

अतिवैयक्तिकता से पूर्ण होने के कारण प्रयोगशील कवियों का प्रकृतिचित्रण अहं केंद्रित है। प्रयोगशील कवियों ने विशेष दर्शन के अभाव और सामाजिक परिवेश एवं जीवन के अंतर्विरोधों से ऊबने के कारण प्रकृति के साथ प्रति क्रिया का भाव प्रकट किया। तात्पर्य यह है कि उन्होंने ने अपने वैयक्तिक ऊब, झुंझलाहट एवं कटुता तथा सामाजिक सघंर्ष एवं अंतर्विरोध को प्रकृति में देखने के साथ ही अपनी लक्ष्यहीन कल्पना से प्रकृति को कैद कर लिया। इन दोनों प्रतिक्रियाओं ने प्रकृति के साथ बलात्कार किया है। इसीलिए प्रयोगवाद में प्रकृति की नैसर्गिक इयता के स्थापन पर मानसिक विकृतियों को बल मिला। 'तारसप्तक' में मुक्तिबोध की 'बिहार' और अज्ञेय की 'शिशिर की' राकानिशा' शीर्ष कविताओं में प्रकृति के प्रति प्रतिक्रिया का भाव अभिव्यंजित हुआ है।

प्रयोगवादी काव्य में भावुकता की अपेक्षा बौद्धिकता को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है किंतु थोपी हुई बौद्धिकता के कारण अनुभूत्यात्मक गहनता का अभाव भी दिखलाई पड़ता है। प्रयोगशील कवियों की बौद्धिकता जहाँ अनुभूति से विरत हुई है, वहाँ उसकी मौलिकता चमत्कारिक सूक्तियों के रूप में अभिव्यक्त हो गई है। बौद्धिकता के काव्य में शुष्कता भी आई है। कल्पना के स्थान पर बौद्धिकता का निर्वाह करने वाले कवियों में 'अज्ञेय' मुक्तिबोध और शमशेर आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। व्यक्तिवाद एवं अहंवाद से काव्य में संकीर्णता आई है। यूँ भी कहा जा सकता है कि अनेक कविताएँ, या तो बौद्धिकता से ग्रस्त हैं अथवा कुंठा, पराजय, निराशा आदि से आच्छन्न हैं, इसी ने वस्तु तत्व में व्यापकता नहीं आने दी है।

इस प्रकार नई सौंदर्य-दृष्टि अभी रचना में विकसित और पुष्ट होकर सौंदर्यभावना को विशिष्ट रूप नहीं दे सकती है। आधुनिक जीवन के विघटन की परिस्थितियों से क्षुब्ध होकर कवि क्षण की अनुभूति को ले कर चलता रहा। सौंदर्य स्थाई वस्तु न रह कर क्षाणिक अनुभूति का विषय हो गया है। प्रयोगवादी क्षण की सौंदर्यानुभूति को अनंत सघन अनुभूति कां रूप देने का प्रयोग करते रहे। शाश्वतवाद को स्वीकार न करने पर अनुभूति क्षंण की ही होती है और वही जीवन का सत्य प्रतीत होता है। क्षण को निरपेक्ष और पूर्ण इकाई मानने पर सौंदर्य अपने व्यापक महिमामय रूप में प्रकट नहीं हो सकता। प्रयोगवादी कविता सौंदर्य और उदात को छोड़कर लघुता के साधारण

रंजक रूप का उद्घाटन करती है। स्वच्छंदतावादी भावना ने लघुता को रमणीय और उदात बनाया है तो प्रयोगवाद ने उसे यथातथ्य रखा है या शमशेर की 'लुढ़की सुराही' की तरह प्रतीकात्मक रूप दिया है। लघु रूप और क्षण की अनुभूति में कभी-कभी ऐसा लगता था, कि कविता सौंदर्यरहित स्थिति पर पहुँचकर वास्तव में अकविता तो नहीं हो रही है। क्योंकि परंपरागत सौंदर्य भावना के सभी पहलुओं का तिरस्कार-सा हो रहा है।

यह स्थिति आधुनिक युग के अनुरूप नये सौंदर्यबोध की भूमिका हो सकती है जिस में सौंदर्य के प्रतिमान बदल हो।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता प्रयोगवाद में निजता की अधिकता है, छायावादी शिल्प का आग्रह थोड़े बदले हुए रूप में मौजूद है। कवि व्यक्तित्व की दुरूहता और भारतीय आदर्शवाद, आत्मा, परमात्मा, देह-आत्मा, आस्था-अनास्था लघु-विराट का द्वंद्व बना रहा है, जो नई कविता को धरोहर के रूप में मिला।

❑❑❑

29. समकालीन काव्य में संवेदना और सौंदर्य दृष्टि

सार्व ने लेखकीय प्रयोजन को निरूपित करते हुए इसका उद्देश्य पाठक तक सौंदर्य-सुख की संवेदना पहुँचाना बताया है, जिसे वह सौन्दर्याह्लाद कहते हैं, कृति में इस संवेदना को उत्पन्न करने की क्षमता ही उनके अनुसार रचना की उपलब्धि है। भारतीय काव्यशास्त्र में रस-सिद्धांत के माध्यम से 'आनंद' की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है, प्रत्येक कलानुभूति से निहित मूलभूत आनंद का साक्ष्य, आत्मसातीकरण और संप्रेषण इन तीन चरणों में कलाकार की पूर्णता के स्तर विकसित होते हैं। लेखक और पाठक इस अनुभूति के सहभागी भोक्ता जब तक न हों। तब तक उनके बीच संलाप की एकरूपता और सततता की स्थापना कृति के माध्यम से नहीं की जा सकती। अतः साहित्य के किन्हीं भी रचना मूल्यों की प्रतिष्ठा के उपक्रम में पाठक की अवहेलना या उपेक्षा से काम नहीं चलेगा, उसका ध्यान रखना होगा और उसकी ग्राहकता के संदर्भ में उन तमाम बातों का विश्लेषण करना होगा जिन्हें रचनाकार की विशिष्ट स्थिति में देखने का आग्रह अस्तित्ववादी करते आए हैं। ग्राहकता का प्रत्यक्ष संबंध संवेदनाशीलता से है, नयी कविता संवेदना की दृष्टि से लेखक और पाठक में से किसी एक पक्ष को विशेषाधिकार नहीं सौंपती—'कवि अ-कवि से अधिक संवेदशील या अनुभूतिशील नहीं होता... यह संभव है कि कवि की संवेदना का क्षेत्र अ-कवि से कम हो।'

भावबोध के न्यून स्तर

नूतन भावबोध की मर्यादाएँ स्थापित करते हुए एडमंड हषरेल ने लिखा है, 'समस्त इद्रिंयानुभूत संयोजन और तदनुसार मनोवैज्ञानिक अनुभव भी अनुभव के परम संस्थान के संकेतक होते हैं, और बिल्कुल विशिष्ट अपरिहार्य रूपाकारों को प्रदर्शित करते हैं, जिनके अतिरिक्त अन्य रूपाकार भी अनुभव किये जा सकते हैं, यह सभी अनुभवातीत, मात्र सापेक्ष्य और संभाव्य एक ही बोध हैं।' अस्तित्ववादी चिंतन में इंद्रियानुभवी अस्तित्व और चेतना के पारस्परिक संबंध को प्रामाणिक चेतना का आधारभूत मूल्य माना गया है। इस तरह वह संवेदना को व्यक्ति की परिधि में सीमित

नहीं करता, और व्यक्ति को रुचि-अरुचि से मर्यादित भी नहीं करना चाहता। कलाकार अपने परिवेश, समाज और स्थिति के अनुसार जो कुछ भी अनुभवों के रूप में ग्रहण करता है, उस सब की आवश्यकता चेतना को अपनी स्फीति तथा विस्तार के लिए होती है।

नई कविता से पूर्व के काव्य आंदोलनों में संवेदना को वर्गीकृत सरणियों के अंतर्गत ग्रहण किया जाता था, वह सरणियाँ स्थूल सामाजिक संप्रत्ययों पर आधारित थीं जैसे आशा-निराशा, शुभ-अशुभ, प्रेम-विराग आदि। नवकाव्य इन सामान्यीकृत और वर्गीकृत स्थूलताओं को स्वीकार नहीं करता और संवेदना के सूक्ष्म संकेतों को ग्रहण करने के लिए स्थिति-सापेक्ष्य अनुभूति को प्रमाणित मानता है। इस प्रकार नई कविता में भावबोध के समग्र संस्थान को उसके संघटक स्रोतों की बारीकी में जा कर अनुभव करने की चेष्टा की जाती है, इसके लिए ग्राहक चेतना की तन्मयता, मार्मिकता और आभ्यंतरिक शुद्धता पर विश्वास किया जाता है। बोध के विषयों में कटु और मधुर, शिव तथा अशिव, सुंदर तथा असुंदर का भेदभाव वह नहीं बरतती, और न श्लील-अश्लील को ले कर कोई बहस ही करती है। सत्य को वह विवेक का निर्वाचन मानती है और यही विवेक बौद्धिक तन्मयता के क्षणों में उसके लिए सुदृढ़, अच्युत और अधिभिन्नित साक्षात्कारों को भावबोध के स्तर पर प्रतिष्ठिता करता है। इस प्रकार वह भावबोधों की अनुशासित शुद्धता का उल्लघंन कर के सत्य को धन और ऋण दोनों आयामों में ग्रहण करना चाहती है। यह उसकी स्वच्छंद अभिव्यंजना की पृष्ठभूमि का सारतत्व है।

अवसाद और तिक्तता

काव्य का नूतन भावबोध पूर्वाग्रहों और वर्जनाओं के अनुशासन को स्वीकार नहीं करता। इसलिए इस काव्य में तिक्तता, निराशा, अवसाद, विक्षोभ और पराजय की भावमुद्राएँ त्याज्य नहीं है। समकालीन युग की मन:स्थितियों से उनका सापेक्ष्य संबंध नए कवि का एटीट्यूड और टेम्परामेंट बनाता है। समसामयिकता के प्रति दायित्व का आग्रह, लोकसंवेदना के आत्म साक्षात् और काव्यदृष्टि में मूल्यान्वेषण की आकुलता, नई भूमियों पर संचरण और संभावनाओं का विस्तार नूतन भावबोध को नियमित करने वाले विभिन्न तत्व हैं। चूँकि हमारे युग की मन:स्थिति में आंतरिक सामंजस्य के स्थान पर एक उखड़ा हुआ वातावरण, संक्रांतिकालीन मूल्य-क्षय और आत्मपरायापन तथा भटकाव के ध्रुवों का तीव्र स्पंदन निहित है इसलिए नई कविता में भी विद्रोह का कोई सर्वांग स्वरूप उभरने के बजाए घृणा, तिक्तता और व्यंग्य के स्वरों की प्रधानता है।

'जब महान संकट से गुजर रहे हो पढ़े-लिखे जीवित लोग
एक अधमरी अपढ़ जाति के पागलपन को दिशा देते हुए

तक आप समझ सकते हैं कि एक मरे हुए आदमी को

मसखरी कितनी पंसद है–

पर तब मैं पूछूँगा नहीं कि सौ मोटी गर्दनों झुकी हैं बुद्धि से? श्रद्धा से? कि लज्जा से? मैं सिर्फ उन सौ गंजी चाँदों पर टकटकी बाँधे रहूँगा।

अपनी मरी हुई मशीन की टकटकी।'

प्रस्तुत कविता का संदर्भ बंगला देश की त्रासदी है। स्वतंत्रता की कामना की पूर्ति के लिए मृत्यु का वरण करता हुआ बंगला-देश, संसार के तमाम सभ्य और शक्तिशाली देशों की बेशर्म उपेक्षा का शिकार बंगला-देश, कविता ने बंगला देश की इस त्रासदी को उसके यथामूल्य पर स्वीकार किया है, नई कविता से पहले के कवि संभवत: इतिहास की इस कुत्सित घटना पर ओजपूर्ण शब्दों में विद्रोह की सृष्टि करते, किंतु नया कवि घटना के यथार्थ में अपनी तरफ से कुछ जोड़ना नहीं चाहता, घटना को अपनी आत्मवेदना से सम्पृक्त कर के वह एक प्रतिक्रिया भर प्रस्तुत करता है, असफल-विद्रोह की निराशा को वह नहीं छुपाता, और न ही अपनी अदम्य विद्रोह-कामना को। इन दो चरमस्थितियों के बीच वह जो कुछ प्रस्तुत कर रहा है वह एक तीव्र घृणा और नाटकीय नियति का व्यंग्य है। नये कवियों कभी-कभी यह व्यंग्य इतना अधिक तिक्त हो उठता है कि शालीनता के अभ्यस्त पाठकों को हतप्रभ कर दे।

आस्था और अनास्था के स्वर

समकालीन विद्रप, व्यंग्य और असंगति को ग्रहण करने की तत्परता नई कविता में दो प्रकार से व्यक्त हुई है। एक ओर ऐसे कवि हैं जो इस विसंगति और निरर्थकता को आस्था की अंतिम विजय की संभावना से समन्वित करते हैं। द्रष्टव्य–

'सारे संसार में फैल जाएगा एक दिन मेरा संसार

सभी मुझे करेंगे–दो चार को छोड़ कर–कभी-न-कभी प्यार

मेरे सृजन, कर्म-कर्त्तव्य, मेरे आश्वासन, मेरी स्थापनाएँ

और मेरे उपार्जन, दानव्यय, मेरे उधार

एक दिन मेरे जीवन को छा लेंगे– ये मेरे महत्त्व डूब जाएगा तंत्रीनाद कवितारस में राग में मेरा महत्त्व।'

दूसरे छोर पर ऐसे कवि हैं जिनमें निरर्थकता का बोध एक दंश बन कर उभरा है, और अस्तित्ववादियों के अंतिम शून्य की तरह वह एक भयावह नकार के अतिरिक्त कुछ नहीं देखते। नई कविता की सबसे ताजा प्रशाखा तथाकथित 'अकविता'

आंदोलन के कवियों में यह बोध बहुत अधिक तीव्र और गहन है। कुछ उदाहरण इसे प्रकाशित करेंगे–

'अब यहाँ कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है
पेशेवर भाषा के तस्कर संकेतों
और बैलमुती इबारतों में
कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है

× × ×

'मेरे जीवन में अब एक ऐसा वक्त आ गया है
जब खोने को
कुछ भी नहीं है मेरे पास
दिन, दोस्ती, रवैया
राजनीति गपशप, घास
और स्त्री हालाँकि वह हुई है
मेरे पास ....।'

अपने काव्य-संग्रह 'माया दर्पण' की भूमिका में कवि श्रीकांत वर्मा ने निरर्थकता के अपने बोध को प्रकट करतु हुए लिखा है, 'मैं यह अच्छी तरह जातना हूँ किसी ने होने से कुछ भी नहीं होता मेरे न होने से कुछ भी नहीं मिलेगा। मेरे पास कुर्सी भी नहीं है जो खाली हो। मनुष्य वकील हो, नेता हो, संत हो, मवाली हो–किसी के न होने से कुछ नहीं होता।'

दुःस्वप्न जैसे वास्तविक संसार और अंतरात्पा के बीहड़पन के सयुंक्त बोध ने नए कवि की मानसभूमि को ग्रंथित बनाया है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता। अनवरत संघर्ष और तनाव की व्याप्ति में अपनी अस्मिता को उसके समस्त मानवोचित गुणों के संदर्भ में शुद्ध और चेतन बनाए रखना एक कठिन काम है। मुक्तिबोध उन थोड़े से कवियों में से एक हैं जो यह कार्य सफलतापूर्वक गरिमा के साथ कर पाये हैं। उनकी कविताओं का वातावरण फेटेसी जैसा, मिथिकल, तिलिस्मी और कलापूर्ण है, जिसके माध्यम से वह मूल्यविहीनता, अमर्यादा, उच्छंखलता, निरर्थकता और प्रत्ययों के स्खलन से विद्ध समसामयिकता का साक्षात करते हैं।

सौंदर्यबोध के प्रतिमान

अपनी पूर्ववर्ती कविता से नई कविता अपने सौंदर्याग्रहों की दृष्टि से भी भिन्न और अपने विशिष्ट व्यक्तित्व से युक्त है। सौंदर्य की उसकी दृष्टि गरिमावलयों से

आवेष्टित, मर्यादित देवमालाओं के गिर्द सीमित नहीं है, अपितु वह किसी हद तक पैगन है, जहाँ का सौंदर्य का साक्षात्कार उसकी स्फीति, मौलिकता और शुद्धतो के माध्यम से उन्मुक्त साहचर्य और भोग की मुद्राओं में किया जाता है। सार्त्र का कथन है, 'सौंदर्य इकाई गत नहीं होता, इसके लिए दो इकाइयों की आवश्यकता होती है, एक प्रकट और दूसरी गोपनीय। यदि हम वस्तुगत सौंदर्यसार को दृष्टिनिक्षेप मात्र से ग्रहण करने का प्रयत्न करें तो वह एक दृश्य-साध्य भर रह जाती है।' कलाकार इस दुहरे सौंदर्य को आत्मसात् कर के उसे अंगी रूप में संप्रेषित करता है और ग्राहक को उसे ग्रहण करने की प्रक्रिया में उसकी संपूर्ण पुनर्रचना करनी होती है। इस प्रकार अस्तित्ववादी सौंदर्य-मूल्यों में सौंदर्यबोध के सार्थ बोधकर्ता की भागीदारी और भोग आवश्यकता रूप से जुड़ा हुआ है।

सौंदर्य-सिद्धांत की अस्तित्ववादी व्याख्या सार्त्र, मारलो पोंटी और आर्तूगो बी० फैलिको द्वारा की गई है। पोंटी के अनुसार कलाकृति अपने स्रष्टा और भोक्ता के बीच का माध्यम है, इसमें कला सौंदर्य की प्राथमिक अभिव्यंजना है जिसका कर्ता कलाकार होता है और कलादर्शन द्वितीयक जहाँ दर्शक प्रक्रिया का प्रधान पात्र होता है। सार्त्र के सौंदर्य सिद्धांत पर मार्क्सवाद की गहरी छाया है। मार्क्सवाद वस्तुगत यथार्थ, भोक्ता की सौंदर्यचेतना और कृति की तीन इकाइयों को सौंदर्य-विवेचना का आधार बनाता है और इनकी द्वंद्वात्मक एकता ही उसकी परिधि में सौंदर्यानुभव है। कला को उसने समाज के आर्थिक आधार पर खड़ी विचारधारा का बौद्धिक-सांस्कृति अंग माना है और वह इतिहास के पटल पर वर्गीय चेतना को प्रतिबिंबित करती है। मार्क्यवादी सौंदर्यबोध में विषयीगत बोध को विषगत सौंदर्य क्रियाओं और संबंधों का मनन और प्रत्यक्षण माना जाता है। सार्त्र के अनुसार कला एक आशय युक्त क्रिया (इंटेशनल ऐक्ट) है, जो कल्पना से संचालित होती है। कल्पना कलाकार के स्वातंत्र का उद्‌घाटन है, क्योंकि वह प्रदत्त स्थिति से आगे बढ़ कर वस्तु और उसके सार का सृजन करती है। कला का भोक्ता कृति को वस्तु के रूप में देखता है और अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग करते हुए उसकी पुनर्रचना करता है। इस प्रकार वस्तु उसके लिए आवश्यक हो जाती है। और कलाकार गौण, जो कलाकृति की रचना में पूर्व आवश्यक था और जिसके लिए कलाकृति गौण थी इस प्रकार सार्त्र अपने सौंदर्य सिद्धांत में कल्पना और स्वतंत्रता के दो मूल तत्वों के आधार पर एक द्वंद्वयुक्त एकीकृत संप्रत्यय प्रस्तुत करते हैं।

नई कविता के लिए सौंदर्य खंड-सत्य नहीं, बल्कि एक संपूर्ण सत्य है। सौंदर्य के प्रति नए कवि की दृष्टि में तटस्थता नहीं, भोग-कामना की आतुरता है। वह सौंदर्य का भोक्ता और उसे आत्मसात् कर के वह उसे भोगना चाहता है। सौंदर्य उसके लिए स्थिर दृष्टिकोण नहीं है, बल्कि एक संभावनायुक्त गतिशीलता और संभावनाओं की

सापेक्ष्यता में विकसित होती है। सौंदर्य के प्रति चेतन-विवेक और आशयपरक आत्मसातीकरण की यह विशिष्टता नई कविता को उसकी पूर्वा के संदर्भ में विशिष्ट गुणत्मकता देती है। उसने जीवन की वास्तविकता को रहस्यों और गाथाई दुर्बोधता से पृथक करके बोधगम्य बनाया है, इसलिए सौंदर्यानुभूति के लिए उसका माध्यम यथार्थ है। इसलिए वह असुंदर की उपेक्षा नहीं करती, क्योंकि उसके लिए असुंदर भी सुंदर के बोध का माध्यम है। सौंदर्य को उसने एक चमत्कार नहीं माना, सत्य का साक्षात्कार माना है, सत्य जो जीवन की मन्तव्यपूर्ण क्रियाशीलता से उद्‌भूत और तदनुसार अनुभूति की एक उपलब्धि है। ऐसी उपलब्धि जिसमें मानवमुक्ति निहित है, और इसलिए नई कविता ने सौंदर्य की निजी अनुभूति को प्रसारमार्गी समाजीकरण दिया है, 'वास्तविक सत्य और यथार्थ के अधिकाधिक समीप पहुँचेगा, जो इसका जितना मार्मिक आकलन और उद्‌घाटन करेगा, वही साहित्यकार समाज की और जनता की अधिकाधिक सेवा करेगा, और उसके लिए अनन्य सौंदर्य की सृष्टि कर सकेगो।'

दूसरा सप्तक में अपनी कवितओं के साथ दिए गए वक्तव्य में शमशेर ने कहा था, 'सुंदरता का अवतार हमारे सामने पल-छिन होता रहता है। अब यह हम पर है कि हम अपने सामने और चारों ओर इस अनंत और अपार लीली को कितना अपने अंदर घुला पाते है।' शमशेर नई कविता के उन कुछ प्रमुख कविया में से हैं जिन्होंने सौंदर्य को अपनी आत्मा का विषय बनाया है।

उनके शब्दों में 'निर्लिप्त विधायक क्षमता की एक अत्यंत उच्च स्थिति होती है जो रचनाकार को तब प्राप्त होती है जब वह अपने 'भोक्ता' को स्वयं 'दर्शक' बना कर देखने का स्तर प्राप्त कर लेता है।' एक नए काव्यसंग्रह में माथुर अपनी कविताओं का "काल के चतुर्थ आयाम की कविताएँ' संग्रह में माथुर अपनी कविताओं को "काल के चतुर्थ आयाम की कविताएँ कहते हैं, जो बिंबों में प्रवेश करती हैं, जिनमें देश-काल संहति की स्पर्श-पार सूक्ष्म अनुभूतियाँ प्रस्तुत की गई हैं। इन कविताओं में-

काव्य की पैगन दृष्टि

इस टिप्पणी के प्रारंभ में नई कविता में सौंदर्य की पैगन दृष्टि की जो बात कही गई थी, उसे भी देख लेना चाहिए। पैगन दृष्टि से हमारा आशय एक ऐसे सहज, उन्मुक्त और प्रत्यक्ष सौंदर्यभोग से है जो वस्तु और भोक्ता के बीच किसी प्रकार की पूर्वाग्रही वर्जना को स्वीकार नहीं करता है। प्रकृतिचित्रों में नए कवि की दृष्टि में पाई जाने वाली माँसलता और भरापूरापन देवमालाओं के विकास से पूर्व के मानवसमाज की अनुभूतियों जैसा था। वैदिक कवियों की दृष्टि प्रकृति-चित्रों का दर्शन इसी

जिज्ञासा, उत्फुल्लता और स्वच्छंदता के साथ करती थी। वसंत की सुबह का यह चित्र केदारनाथ अग्रवाल के द्वारा–

'जल में तैरती हैं
अंग के
अनंग की मछलियाँ
इधर से उधर
उड़ती हैं,
रंगारंग
तितलियाँ
बड़ा अच्छा लगता है
मौत के मुँह से निकला
सूरज–
स्वस्थ
और
प्रसन्न।'

वसंत का दूसरा चित्र तीसरा सप्तक के कवि केदारनाथ सिंह इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं–

'वह कैसा वातास–
कि मन को नयत–नयन कर दिया
गीत को चुप्पी से भर दिया
भर दिया–या कैसा वातास
आज समझ लूँगा में
यह बौरा की भाषा
यह रंगों की बोली–
आज कि यह मन भी बौरों से लद कर झुक आया है–
गाओ।'

नया कवि इन सौंदर्यनुभूतियों को बिंबों के माध्यम से संयोजित करता है। बिंबों का चर्चा अगले अध्याय का विषय है। बिम्ब की बनावट में वह बाह्य प्रकृति को रूपचित्र के माध्यम से आत्मसात् कर के उन्हें अपने व्यक्तित्व का विशिष्ट संदर्भ दे कर उनका पुनः प्रक्षेपण पाठक के निर्मित करता है, और पाठक जब उस रूपचित्र

को प्राप्त करता है तो वह मात्र बिंब और उसने अंकन तक ही सीमित नहीं रहता, उसे उससे आगे जा कर रचनाकार के मन में निहित संश्लिष्ट रूपभोग का अनुभव भी होता है। इस प्रकार नई कविता के सौंदर्यचित्रों का प्रकट रहस्यमय धुँधलका एक संपूर्ण सौंदर्य के दर्शन का माध्यम बन जाता है। सौंदर्य-प्रतीति एक कौंध की तरह उभरती है और पाठक की आत्मा में पैठ कर उसे विभोरता देती है। कुँवर नारायण की यह पंक्तियाँ–

'उन परछाइयों को
जो अभी-अभी चाँद की रसवती नागर से गिरी थीं
चाँदनी में सनी थीं
खिड़की पर लुढ़क पड़ी थीं
किसने बटोरा?'

यहाँ सौंदर्य-प्रतीति बटोरने वाला प्रथमतः भोक्ता-कवि है और द्वितीयतः भोक्ता-पाठक और इन दोनों की भोग को एकान्वित करने का माध्यम है, प्रस्तुत बिंबचित्र जिसमें चाँदनी के छायावादी चित्रों जैसी तटस्थता और स्थिरता नहीं है, एक गतिशीलता है–आशय से युक्त गतिशीलता।

फूहड़ता का सौंदर्य बोध

सौंदर्याभिव्यक्ति का एक सनातन उपादान नारी और यौन भावनाएँ रही हैं। नई कविता इन्हें किस स्वरूप में देखती है? सर्वत्र असंगति ओर विद्रप का दर्शन करने वाले नए कवि से पारंपरिक यौन तथा वर्जनाओं द्वारा संयत मर्यादित यौन-व्यवहार का अनुगानी होने की आशा नहीं की जा सकती। सार्त्र की कृतियों में मानवी के योनिमात्र बन जाने का शालीन आलोचकों द्वारा लगाया गया आरोप हमने देखा हे और सार्त्र द्वारा प्रणय को स्वतंत्रता के अपहरणकर्ता संवेग माने जाने की बात हम देख चुके हैं। मणि मधुकर भी प्रणयसहयोगिनी को इसी दृष्टि से देखते हैं–

'वह जाने लगी। और अचानक मुझे भाने लगी पर
मैंने उसे रोका नहीं। रोकने का अर्थ उसके नजरिए को
ओढ़ना। अपने लिए एक बर्बर नरक खोजना।'

सांप्रतिक कवि अपने निजी और सामाजिक जीवन के बीच कोई दुरावछिपाव नाने को तैयार नहीं है। आत्म निरावरण (सेल्फ एक्सपोजीशन) के आग्रह ने नैतिक और सामाजिक नियंत्रणें की दुर्गीय प्राचीरों को एक भयानक विस्फोट के साथ उड़ा दिया है, आज वह यौन की निर्द्वन्दता का पक्षधर है, और परम-वैयक्तिक क्षणों के चित्रण को वह निषिद्ध विषय नहीं मानता। नव काव्य की यह स्वच्छंद भंगिमा इतनी

अधिक आगे बढ़ गई है जहाँ आदिम और बर्बर यौन-भोग है। सौंदर्य में उदात्तता उसे ग्राह्य नहीं, वह अपने विद्रूपमय, व्यंग्यात्मक और फूहड़ यौन जीवन को, जिसमें विकृतियाँ और विच्युतियाँ हैं, और वह उनका होना ईमानदारी के साथ स्वीकार करता है,

❑❑❑

30. कला, काव्य और सौंदर्य सृजन

आधुनिक युग में बढ़ते हुए उपकरणों के वैभव में वेग से बढ़ती हुई मनुष्य की आंतरिक दीनता को देखते हुए उपकरणों की अल्पता और सरलता ही मानव-कल्याण का उतम मार्ग प्रतीत होती है। अल्पतम साधन के रूप में ही उपकरण अपेक्षित है। जीवन का वास्तविक सौंदर्य आंतरिक और आत्मिक है। उपकरण उसके साधन मात्र है। उपकरणों के साध्य बन जाने पर अंतर का सौंदर्य और आत्मा का आंनद विलुप्त होने लगता है जैसा कि वर्तमान युग में हो रहा है। वर्तमान युग के बढ़ते हुए वस्तुवाद और वस्त्रवाद में मनुष्य का मन दीन हो रहा है। वस्तुओं और वस्त्रों के भार से मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा क्षीण हो रहे है।

सात्विकता और आध्यात्मिकता का पूर्ण आदर करते हुए भी अनीति और अतिचार के दमन के लिए शक्ति का उपयोग करना होगा तभी संस्कृति को उन्नति और रक्षा सम्भव हो सकेगी।

रूप और सौंदर्य

समझने की अपेक्षा सौंदर्य आस्वादन की वस्तु अधिक है। हम सौंदर्य के लक्षणों को न समझने पर भी उस पर मुग्ध होते हैं और उसे सराहते हैं।

सराहने की अपेक्षा सौंदर्य को समझना अधिक कठिन है। सौंदर्य का सम्मोहन मनुष्य के मन पर सौंदर्य के सहज प्रभाव के रूप में प्रकट होता है। किंतु सौंदर्य को समझना एक बौद्धिक व्यापर है। सौंदर्य कहाँ तक बुद्धि का विषय है और किस सीमा तक विश्लेषण के द्वारा उसके स्वरूप को समझा जा सकता है, यह संदिग्ध है। फिर भी मनुष्य जैसा बौद्धिक प्राणी सौंदर्य के केवल सहज सम्मोहन से संतुष्ट नहीं रह सकता जहाँ तक संभव रहा है, उसने सौंदर्य के स्वरूप का विश्लेषण किया है, सौंदर्यशास्त्र इसी विश्लेषण का परिमाण है।

मनुष्य की चेतना के इतिहास में साधारण जनों में सौंदर्य का सम्मोहन. कलाकारों के द्वारा कलाकृतियों में सौंदर्य का सर्जन और विचारों द्वार सौंद्रर्य के स्वरूप का विश्लेषण वे तीनों व्यापार समानांतर गति से चलते रहे हैं। उन तीनों व्यापारों में परस्पर तथा उनके एक व्यापार के अंतर्गत की प्रायः मतभेद रहता है। कुछ लोग अपनी रूचि के अनुसार जिस वस्तु को सुंदर मानते हैं, उसे दूसरे लोग सुंदर नहीं

मानते। कलाकृतियां में सौंदर्य को साकार करने की प्रणालियाँ इतिहास में बदलती रही हैं। किंतु सौंदर्य के विचारकों में सबसे अधिक मतभेद है। दर्शन के सिद्धातों की भाँति सौंदर्य की परिभाषाऐं भी असंख्य हैं। साधारण जनों की सौंदर्य विषयक धारणाओं तथाकलाकारों की कृतियों के सौंदर्य के स्वरूप में प्राय: बहुत समानता मिलती है। उसके विपरीत विचारकों में सौंदर्य के संबंध में सबसे अधिक मतभेद मिलता है।

इस मतभेद के बीच सौंदर्य की भारतीय धारणा एक अत्यंत मान्य सिद्धांत का संकेत करती है। इस सिद्धांत का सुत्र संस्कृत भाषा के 'रूप' शब्द में निहित है। संस्कृत साहित्य में 'रूप' शब्द का प्रयोग प्राय: सौंदर्य के पर्याय के रूप में होता है।

व्यापक अर्थ में 'रूप' शब्द अंग्रजी के फॉर्म (Form) का समानार्थक है। अंग्रेजी को फॉर्म अभिव्यक्ति के सभी प्रकारों को अपनी व्यापक परिधि में समहित कर लेता है। पदार्थों तथा कलाकृतियों की अभिव्यक्ति के सभी रूप उसके अंतर्गत आ जाते हैं। वस्तु तत्व से भिन्न अभिव्यक्ति के समस्त रूप फॉर्म (Form) के द्वारा लक्षित होते हैं।

सौंदर्य 'रूप' (Form) की अभिव्यक्ति है। इस सामान्य रूप (Form) में ही सौंदर्य का मूल रहस्य निहित है। सामान्यत: 'रूप' को हम अभिव्यक्ति का माध्यम कह सकते हैं।

सौंदर्य कला की अपेक्षा अधिक व्यापक है। कला रूप के सौंदर्य की रचना है। किंतु समस्त रूप (Form) में रचना का संयोग संभव नहीं है।

सौंदर्य कला की अपेक्षा अधिक व्यापक है। कला रूप के सौंदर्य की रचना है। किंतु समस्त रूप (Form) में रचना का संयोग संभव नहीं है।

कला और सौंदर्य

वस्तुगत सौंदर्य केवल ग्रहण का सौंदर्य हैं मनुष्य की चेतना केवल उसकी द्रष्टा है; सौंदर्य के निमार्ण में उसका कोई सक्रिय सहयोग नहीं है। सौंदर्य की वस्तुवादी धारणा में कठिनाई यह है कि एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को सुंदर और असुंदर अथवा कम सुंदर प्रतीत होती है। सौंदर्य की धारणा में जो परिवर्तन होता है; उस की व्याख्या क्या हो सकती है यदि वस्तु के रूप और गुण तथावत रहते हो। जो वस्तु कुछ लोगों को असुंदर प्रतीत होती है, वह दूसरों को कैसे सुंदर लगती है?

सौंदर्य की वही धारणा सत्य है जो सौंदर्य को चेतना की एक साधारण वृति मानकर उसकी अभिव्यक्ति और व्यवहार के समस्त रूपों के साथ संगत होती है।

कला मनुष्य की कृति का सौंदर्य है। विपरीत प्रकृति का सौंदर्य उसके कृतित्व से स्वतंत्र है। सौंदर्य का दर्शन एक ऋणात्मक व्यापार है उसका सृजन एक रचनात्मक किया है।

अत: जहाँ यह मानना नितांत आवश्यक है कि सौंदर्य केवल वस्तुओं का रूप गुण नहीं है वरन मूलत: मानवीय चेतना की अभिव्यक्ति है वहाँ साथ ही यह भी सत्य है कि चेतना की यह अभिव्यक्ति वस्तुओं और व्यक्तियों के सान्निध्य और उनके साथ समात्मभाव के संवाद और संप्रेषण में ही संभव होती है, समात्मभाव का ये संवाद और संप्रेषण सौंदर्य की अभिव्यक्ति का आधार अथवा अनुषग मात्र नहीं है, वह सौंदर्य का आंतरिक अंग और उसका विधायक तत्व है।

इस प्रकार कला और काव्य के स्वरूप में सत्य के साथ शिवम और सुंदरम् का भी समन्वय है

पश्चिमी सौंदर्य शास्त्र में संवेदना और व्यक्तिमता की प्रधानता के कारण सुखवाद का आग्रह भी बहुत रहा है।

सौंदर्यशास्त्र के इतिहास के भाव; रूप और तत्व तीनों में ही सौंदर्य का अनुसंधान हुआ है। ग्रीक विचारकों ने वस्तुओं के बाह्य रूपों में सौंदर्य का अन्वेषण किया। सामान्यत: वे अनेकता में एकता को सौन्दर्य का मूल स्त्रोत मानते रहे। अनेकता में एकता की व्यवस्था सामंजस्य संतुलन लय आदि के अनुसार होती है। अत: वे सौंदर्य के वस्तुगत लक्षण हैं। कला के संबंध में इन रूपों की चर्चा प्राय: की जाती है और उन्हें महत्त्व दिया जाता है। चित्रकला, मूर्तिकला संगीत आदि के शिक्षण और आलोचना में इन रूपों का प्रयोग सौंदर्य के मानदंड के रूप में होता है। चित्रकला में रेखाओं और रंगों की योजना में तथा संगीत में स्वरों की योजना में सामजस्य, संतुलन, लय आदि की विशेषताओं का निर्देशन करके सौंदर्य की व्याख्या की जाती है। यदि इन सब लक्षणों से सौंदर्य का कोई संबंध नहीं है तब तो कला के अधिकांश आलोचक भ्रांति में हैं। ऐसा कहना दुस्साहस प्रतीत होता है, यद्यपि कुछ विद्वानों के मत में ऐसी धारणायें भ्रांत ही हैं। अनुभूतिवादी मत सौंदर्य को चेतना का भाव मानते हैं।

सौंदर्य के वस्तुगत आधार के संबंध में दो बातें विचारणीय हैं। एक तो यह कि सौंदर्य केवल आत्मगत और आंतरिक भाव है अथवा बाह्य विषयों का अनुषग उसके लिए आवश्यकता था। दूसरी बात यह है किं क्या इन वस्तुगत आधारों में कुछ ऐसा गुण अथवा विशेषताएँ होती हैं जिन का सौंदर्य में विशेष सहयोग है। पहली बात का विचारणीय प्रसंग वे अनुभूतिवादी मत है जो सौंदर्य के विषयों का चेतना की सृष्टि मानते हैं, अत: जिनकी दृष्टि यह विषय आंतरिक है।

बाह्य वस्तुओं के प्रसंग में ही सौंदर्य का अनुभव होता हैं। सौंदर्य की आंतरिक चेतना भी बाह्य विषयों के रूप में साकार होती है।

सौंदर्य का यह 'रूप' वस्तु-तत्व का आकार है। इस आकार में तत्वों के अंगों की योजना 'रूप' का निर्माण करती है। वस्तु का आकार बाह्य और सामान्य होने के नाते सौंदर्य का 'रूप' भी बाह्य और वस्तृगत है।

रूप का सौंदर्य से अधिक निकट संबंध प्रतीत होता है। 'रूप' तत्व के आकार की अभिव्यक्ति है। यह अभिव्यक्ति ही सौंदर्य का स्वरूप है।

उपादानों का सौंदर्य आवश्यक रूप से कला के सौंदर्य का विधायक नहीं होता कला उस रूप की अभिव्यक्ति अथवा व्यंजना है। अतः कला का सौंदर्य मुख्यतः अभिव्यक्ति का सौंदर्य है।

किंतु भाव का यह सौंदर्य एकांत और आंतरिक अनुभूति में ही पूर्ण नहीं है। बाह्य रूपों और तत्वों के उपकरणों और माध्यमों में ही वह साकार होता है।

सौंदर्य केवल माध्यम का प्राकृतिक गुण नहीं है वरन् उसके अतिरिक्त रूप का एक अतिशय है जिसके क्षितिजो का विस्तार अभिव्यक्ति की व्यवस्थाओं और उसके आकारों में होता है।

आनंद का अनुभव भी आंतरिक और अंतर्मुख होता है। किंतु उसके साथ-साथ व्यक्तिगत न होने के कारण उसमें बहिर्मुख अभिव्यक्ति का विमर्श प्रकट होता है।

यदि संवेग को हम कलात्मक सौंदर्य का स्वरूप अथवा आवश्यक अंग माने तो उसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि संवेग की असाधारण स्थिति के अनुरूप कलात्मक सौंदर्य को असाधारण मानना होगा तथा जीवन की साधारण स्थितियों को कला के लिए अनुपयुक्त मानना होगा।"

सत्य है यह कि रस और सौंदर्य जीवन की असाधारण अवस्थाएं नहीं है और न वे असाधारण उत्तेजना की परिस्थितियों में ही जागरित होते हें। शांत मंद और उत्तेजित तीनों ही प्रकार की उन स्थितियों में रस और सौंदर्य की भावना संभव है जो समात्मभाव के अनुकूल है।

निर्विकल्पक अनुभूति और संवेग की उत्तेजना दोनों असाधारण होने के साथ-साथ अल्पस्थायी है। रस और सौंदर्य की वृत्ति न असाधारण है और न अल्पस्थायी। समात्मभाव में उदित होने के कारण वह जीवन की एक साधारण और स्थायी वृति है। जीवन के जो भी उपकरण समात्मकभाव अनुकूल है वे सब रस और सौंदर्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति के निमित्त बन सकते हैं। हमारे मत में समात्मकभाव ही सौंदर्य, कला और रस का मूल स्रोत हैं। सौंदर्य समात्मभाव की अभिव्यक्ति का रूप है। वह रूप के अतिशय से संपन्न होता है। रस उस समात्मभाव के स्वरूप तथा उसकी भूमिका में अन्य भावों की विभूति की आंतरिक अनुभूति है।

सौंदर्य और संवेग में एक अन्य महत्वपूर्ण अंतर यह है कि सौंदर्य चेतना की स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति है तथा वह मूल स्वतंत्र अनुभूति और रचना है, उसके विपरीत संवेदना एवं संवेग भी अनुभूति और क्रिया प्राकृतिक होने के कारण पराधीन होती है।

अनुभव और सृजन की स्वतंत्रता सौंदर्य का मर्म है। उसके विपरीत संवेदना और संवेग प्राकृतिक एवं पराधीन अनुभव है। ये बाह्य विषयों के प्रभाव से शासित होते हैं।

इसके विपरीत कला और सौंदर्य का राग स्वार्थपूर्ण न होकर साम्य से युक्त होता है तथा एक स्वतंत्र स्फूर्ति से प्रेरित होता है। वस्तु-कला और सौंदर्य का भाव संवेदना और संवेग की मनोवैज्ञानिक स्थितियों से अनेक प्रकार से भिन्न है।

सौंदर्य का सृजन और आस्वादन दोनों की इस दृष्टि से अलौकिक हैं कि व स्वार्थ तथा संवेगात्मक उत्तेजना का लौकिक एवं प्राकृतिक स्थिति में सीमित रहते हुए संभव नहीं हो सकते। समात्मभाव को उदार और साम्यपूर्ण स्थिति में ही सौंदर्य का सृजन और आस्वादन संभव हो सकता है। यही कला के रस के संबंध में भी साथ है। इस सौंदर्य की आंतरिक अनुभूति है। सौंदर्य की प्रधानता न होने पर मानवीय संबंधों के आत्मिक भाव में भी इसके निर्झर उमड़ते है। किंतु रस का उदय भी साम्य और समात्मभाव की स्थिति में ही होता है। रसात्मक अनुभव के आहलाद में चेतना का उल्लास अवश्य होता है किंतु यह उल्लास संवेग के सामन विवश उत्तेजना नहीं है। यह चेतना का स्वच्छंद उद्रेक है।

संवेग कल्प के उपादान बन सकते हैं, किंतु वे संवेग के रूप में कलाकार को अथवा कला के अनुभावक को प्रेरित नहीं कर सकते। संवेगों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया संवेगात्मक नहीं हो सकती। संवेगों से उत्तेजित होने पर कला के सौंदर्य रचना और उसके आस्वादन में संभव नहीं है। कलाकार मनुष्य अवश्य है किंतु प्राकृत पुरुषों की भांति संवेगों से प्रेरित होने पर वह मनुष्य मात्र रह जाता है और कलाकार नहीं बन सकता है। इस दृष्टि से कला एक दिव्य और अलौकिक विभूति है। संवेगों की स्वार्थमयता विवशता पराधीनता और असाधारण उत्तेजना के वैषम्य के विपरीत समात्मभाव के साम्य में ही कला की साधना सफल होती है।

अस्तु, स्वरूप से सौंदर्य श्रेय का साधन नहीं है और न श्रेय का विरोधी है। सौंदर्य की सराहना और रचना के आधार के रूप में समात्मभाव श्रेय का बीज है। कलाकार का मांगलिक भाव कला के सौंदर्य को उत्कृष्ठ बनाता है। सत्य का मूल स्वरूप आलोक और प्रसार है। इस आलोक और प्रसार के विस्तार और वितरण में सत्य में सौंदर्य की छवि उदित होती है।

फ्रायड के अनुसार धर्म, संस्कृति और कला के अनेक रूप दमित काम के प्रच्छन्न परितोष के मार्ग हैं।

मनोविश्लेषण के अनुसार कला जीवन की स्वस्थ और साधारण वृत्ति नहीं है। इसके अनुसार कलाकार की स्थिति स्वस्थ एवं साधारण व्यक्ति तथा मनोरोगी के कहीं बीच में है।

इस प्रकार कला दमित वासनाओं, मनोवृत्तियों और मानसिक संघर्षों का काल्पनिक एवं वास्तविक अभिव्यक्ति का लोक-स्वीकृत माध्यम है।

किसी वस्तु का सुंदर होना और सुंदर दिखाई देना दो अलग-अलग बातें हैं।

सौंदर्य केवल सृष्टि नहीं है। वह बहुत कुछ परिणाम में अभिव्यक्ति भी है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से वह उपादान की वस्तुगत व्यवस्था का गुण है।

सौंदर्य वस्तु की संपूर्ण योजना का गुण है उस संपूर्ण योजना की दृष्टि से है विकृति को सौंदर्य का विधायक कहा जा सकता है।

कला सौंदर्य की रचना है अत: कला की प्रत्येक रचना सुंदर होती है। कला में असुंदर और कुरूप का प्रश्न नहीं उठता। यदि संभव हो सके तो कला में सौंदर्य की श्रेणियाँ की जा सकती है तथा कलाकृतियों का न्यूनाधिक सुंदर तथा सौंदर्य की दृष्टि से श्रेष्ठ अथवा हीन माना जा सकता है। किंतु ये सब भेद सुंदर के ही अंतर्गत होंगे कला के साथ असुंदर अथवा कुरूप का संबंध उपादान के रूप में ही हो सकता है।

कला का सौंदर्य अपने आप में अभिव्यक्ति के रूप का सौंदर्य है। इस सौंदर्य से अन्वित होने पर कोई उपादान सुंदर बन सकते हैं।

आधुनिक कला और काव्य में साधारण उपादानों को कला में अधिक समाहित किया गया है। जिन उपादानों का स्वरूपगत सौंदर्य अधिक प्रखर नहीं है उन्हें कला और काव्य में बहुत स्थान दिया गया है। आधुनिक कला और काव्य का यह कौशल अत्यंत अभिनंदनीय है।

❑❑❑



नाम : डॉ. तिलक राज शर्मा
जन्म तिथि: 12 सितंबर 1959
शिक्षा : एम.ए. (हिन्दी), बी. एड. एम.एड. एम. फिल. पी. एच. डी.।

प्रकाशित रचनाएँ

1. नयी कविता का सौंदर्य बोध (2009)
2. 'तार सप्तक' की कलात्मकता (2010)
3. नाटक कार मोहन राकेश की नारी संवेदना (2010)
4. मंथन (2012)

पुरस्कार

- कर्म विद्या एजुकेशन ट्रस्ट द्वारा सर्वश्रेष्ठ शिक्षक पुरस्कार से सम्मानित।
- सब–रस–साहित्य संगम द्वारा श्रेष्ठ काव्य लेखन पुरस्कार से सम्मानित।
- राष्ट्रीय गौरव पुरस्कार (2011)

अन्य गतिविधियाँ

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय (जम्मू विश्वविद्यालय) के अध्ययन केन्द्र गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज, कठुआ में समन्वयक (Coordinator) के रूप में कार्यरत।
पत्र–पत्रिकाओं में शोध–पत्र प्रकाशित।
अध्ययन, अध्यापन में सहज अभिरूचि, साहित्यिक, सामाजिक संस्थाओं से सम्बद्ध तथा आकाशवाणी के केन्द्रों द्वारा आयोजित परिचर्चाओं में मंच–संचालन में भागीदारी
पिछले 15 वर्षों से भारत–विकास परिषद के सक्रिय कार्यकर्ता तथा निरंतर तीन वर्षों से कठुआ प्रान्त के सचिव पद पर कार्यरत।
राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर साहित्य सम्मेलनों संघीष्टीयों, परिचर्चाओं में भागीदारी और विभिन्न विषयों पर पत्र–प्रस्तुति।
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी शिक्षण तथा अन्य शिक्षण कार्यक्रमों में सक्रिय भूमिका।

संप्रति

प्राध्यापक–हिन्दी विभाग राजकीय महाविद्यालय कठुआ (जम्मू व कश्मीर)।

ISBN: 978-93-80937-84-7
₹ 495.00

₹ 495.00

ISBN: 978-93-80937-84-7

alfa Publications

alfa Publications

4398/5, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi-110 002
Phone: 23275092, 23274151
e-mail:alfapublications@yahoo.co.in
alfapublications@gmail.com